इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 20
भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य

खंड

4

भारतीय दलित आत्मकथन

इकाई 14
अक्करमाशी–I 5

इकाई 15
अक्करमाशी–II 15

इकाई 16
जीवन हमारा–I 23

इकाई 17
जीवन हमारा–II 36

पाठ्यक्रम विशे-ज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय (सेवानिवृत्त)
सी–3, कावेरी, इग्नू आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह (सेवानिवृत्त)
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

स्व. प्रो. शिवकुमार मिश्र
गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. निरंजन सहाय महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ बनारस	**14 और 15**	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
प्रो. विमल थोरात मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	**16 और 17**	

पाठ्यक्रम निर्माण एवं संपादन सहयोग
डॉ. शिवदत्ता वावळकर
आर.टी.ए. मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आवरण चित्रकार
सवी सावरकर
नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग
मिथिलेश प्रसाद/कौशल्या सैनी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

जुलाई, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6783-3

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रक : गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी–90, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110020

खंड परिचय

एम.एच.डी. 20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' पाठयक्रम का यह चौथा खंड 'भारतीय दलित आत्मकथन' है। दूसरे और तीसरे खंड में आप ने भारतीय दलित कहानियों का अध्ययन किया है। इस चौथे खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः मराठी भाषा के चर्चित लेखक शरणकुमार लिंबाळे की आत्मकथा 'अक्करमाशी' और प्रसिद्ध लेखिका बेबीताई कांबळे की आत्मकथा 'जीवन हमारा' का अध्ययन करना है। साहित्य के क्षेत्र में आत्मकथन दलित साहित्य की प्रमुख विधा ही नहीं बल्कि समसामयिक परिस्थितियाँ और दलित जीवन की वास्तविकता को समझने का महत्वपूर्ण दस्तावेज भी है। दलित रचनाकारों ने आत्मकथाओं के माध्यम से दलित जीवन सन्दर्भों को बड़ी शिद्दत से मुखर किया है। इस खंड में अध्ययन के लिए चयनित आत्मकथाओं के विश्लेषण से आप आत्मकथाओं की स्वरूपगत विशेषताएँ, भारतीय समाज की संरचना, विषम सामाजिक परिस्थितियाँ, दलित जीवन के कठोर अनुभव एवं संघर्ष, वेदना, उत्पीड़न, मानवीयता के पहलू, जीवन संवेदनाओं की सच्चाई, विद्रोह एवं प्रतिरोध और दलित लेखकों के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार आदि बिंदुओं को विस्तार से समझ सकेंगे। इसके अलावा आत्मकथाकारों की वैचारिकी और प्रतिबद्धता को भी जान सकेंगे। इस खंड में दो आत्मकथनों पर कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 14 अक्करमाशी–I

इकाई 15 अक्करमाशी–II

इकाई 16 जीवन हमारा–I

इकाई 17 जीवन हमारा–II

खंड की इकाई 14 **अक्करमाशी–I** आत्मकथा पर केंद्रित है। इसमें शरणकुमार लिंबाळे के रचनात्मक योगदान से परिचित होते हुए मराठी में आत्मकथा लेखन की परंपरा एवं दलित साहित्य की वैचारिकी को विश्लेषित किया गया है। 'अक्करमाशी' में भारतीय गावों की बसावट और वहाँ मौजूद जातिभेद, दलित व्यक्ति का बचपन में होने वाला शोषण, सामाजिक दबाव के बीच मानसिक आघात, स्कूली शिक्षा के दौरान मिलने वाली भीषण यंत्रणा, दलित जातियों के सामाजिक अंतर्विरोध, अज्ञानता, आर्थिक अभाव, अवसादग्रस्त जीवन की विडम्बनाएँ आदि का वास्तविक अंकन मिलता है। दलित जीवन से जुड़े इन पहलुओं को इस इकाई में विश्लेषित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता, वैचारिकी और दलित चेतना के स्वरों से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 15 **अक्करमाशी–II** में दलित समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार और भारतीय गावों के सवर्ण वर्चस्ववादी तबकों की असलियत एवं अमानवीयता को विश्लेषित किया गया है। स्वतंत्र भारत की परिस्थितियाँ, लोकतांत्रिक प्रणाली एवं परिवेश के आलोक में हाशियाकृत जीवन जीने के लिए मजबूर हुए दलितों की जीवन दशाओं को 'अक्करमाशी' में दर्शाया गया है। मनुष्यता विरोधी रचे गए षड्यंत्र, अस्पृश्यता, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति एवं शोषण आदि के वास्तविक दृश्यों को आत्मकथाकार शरणकुमार लिंबाळे ने बड़े साहस से मुखर किया है। इस इकाई में आप 'अक्करमाशी' के बहाने भीषण सामाजिक एवं मानसिक यंत्रणा से संतप्त होने पर मनुष्य के मन में उभरी प्रतिशोध की भावना और विद्रोह के विभिन्न पहलुओं से परिचित होंगे। साथ ही सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा से दलितों में उभरी नई मुक्तिकामी चेतना को भी समझ सकेंगे।

खंड की इकाई 16 **जीवन हमारा–I** है। बेबीताई कांबळे लिखित 'जीवन हमारा' आत्मकथा एक दलित स्त्री द्वारा लिखित प्रथम आत्मकथा है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं दलित मुक्ति आंदोलन में दलित स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसे बेबीताई कांबळे ने अपनी आत्मकथा के द्वारा उजागर करते हुए दलित स्त्री की अस्मिता एवं योगदान को बारीकी से चिह्नित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप बेबीताई कांबळे का जीवन परिचय एवं रचनात्मक योगदान, 'जीवन हमारा' आत्मकथा का ताना–बाना, केन्द्रीय विषय वस्तु, आत्मकथाओं में आये दलित चरित्रों की विशेषताएँ आदि से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 17 **जीवन हमारा–II** में दलित स्त्री की आंदोलनधर्मिता और उसकी परिवर्तनकामी चेतना को विश्लेषित किया है। भारतीय समाज में दलित स्त्री को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक दबावों के बीच अत्यंत कठोर यातनाओं को सहना पड़ता है। गावों में दलित स्त्री धर्मसत्ता, अर्थसत्ता एवं पितृसत्ता के आघातों को झेलती है। वह जातिभेद एवं सवर्णवादियों के हमलों की पहली शिकार बन जाती है। शारीरिक और मानसिक शोषण को सहते हुए भी दलित स्त्री में परिवर्तन की अत्यंत प्रखर चेतना मौजूद होती है। बेबीताई कांबळे ने दलित स्त्री के तिहरे शोषण को उजागर किया है। साथ–ही दलित स्त्री की सांस्कृतिक दुनिया और दलित मुक्ति आंदोलन में सक्रीय भागीदारी को भी बताया है। इस इकाई में इन्ही कुछ पहलुओं के आलोक में 'जीवन हमारा' का विश्लेषण किया है, जिसका अध्ययन आप को करना है।

इस सम्पूर्ण खंड के महत्वपूर्ण प्रश्न अंत में दिये गए हैं। साथ–ही उपयोगी पुस्तकों की सूची दी है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए, इससे आप को अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

इकाई 14 अक्करमाशी-I

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 मराठी दलित आत्मकथन और अक्करमाशी

14.4 शरणकुमार लिम्बाले का रचना-संसार

14.5 उम्र की उठानः सुख के द्वीप और अंतहीन दुख

14.5.1 ज्ञान के दुर्ग में बहिष्करण की प्रक्रिया

14.5.2 भूख सबसे बड़ा सच

14.6 भारतीय गाँव और दलित भेद

14.6.1 भारतीय गाँव और दलित भेद

14.6.2 अछूतों के बीच काम का बँटवारा

14.6.3 विवेक की उठान और सवालों की सलीबें

14.7 दलित समाज की आंतरिक अस्पृश्यता

14.8 यातना का जीवनः सुख-दुख का द्वंद्व

14.8.1 प्रेम का बसंत

14.8.2 अक्करमाशी होने का अहसास

14.8.3 पिता का नाम मिलने की कहानी

14.9 यंत्रणा के कुछ और अनुभव खंड

14.9.1 लहूलुहान जीवन और नाना की मौजूदगी

14.9.2 विवाह की अडचनें

14.9.3 वैवाहिक जीवन में दुख और उनसे मुक्ति

14.10 सारांश

14.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप मराठी के बेहद उल्लेखनीय आत्मकथन अक्करमाशी के संवेदना संसार के विभिन्न पहलुओं से रू-ब-रू होंगे। अभिव्यक्ति पारंपरिक रूपों में असहमत इस कृति ने मराठी साहित्य के मानदंडों पर नये सिर से विचार के लिए प्रेरित किया । दया पवार के 'अछूत' के बाद प्रकाशित यह आत्मकथन में बहिष्कृत भारत की जिन निर्मम सच्चाईयों को बेलाग ढंग से अभिव्यक्त किया वह मील का पत्थर साबित हुआ। दलित आत्मकथनों ने साहित्य को महज आनंद और विनोद के दायरे में सीमित करने के कुत्सित इरादों से न सिर्फ हमें आगाह किया बल्कि उनके समानांतर सत्य के साक्षात्कार का विवेक भी दिया। इस अर्थ में वह दलित अस्मिता के निर्माण का प्रखर और मुखर साथी बना। लंबे समय तक अभिव्यक्ति के इन रूपों के प्रति पारंपरिक आलोचना ने दुराव और उपेक्षा का रवैया

अपनाया। पर हिन्दुस्तान की करोड़ों पददलित जनता की आवाज होने के कारण इस साहित्य ने केन्द्रीयता हासिल की। दलित साहित्य ने उन्मेशकाल से ही सच के प्रति अपनी अभूतपूर्व आस्था के कारण सबसे पहले आत्मकथनों को सिरजा। वर्ण-व्यवस्था को दैवी विधान मानने वाली ब्राह्मणवादी संस्कृति ने प्रारब्ध, पूर्वजन्म, कर्मफल न्याय की जिन कुहेलिकाओं का निर्माण किया उसमें श्रमीशील जन के शोषण की संस्कृति का व्यापक निर्माण हुआ। श्रमविमुख शोषकों को पूज्य पद और श्रमशील शोषितों के लिए समर्पण और सेवा नहीं तो बहिष्करण और मृत्युदंड का जानलेवा दंश। दलित आत्मकथनों ने इसी संस्कृति को प्रश्नबद्ध किया और अस्मिता की नयी अवधारणा से हमें संपन्न किया। इन भाषी मानकों के लिहाज से 'अक्करमाशी' से गुजरना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप परिचित होगें।

- वर्णव्यवस्था की उन दुरभिसंधियों से जिनके चलते बहुसंख्यक श्रमशील जन का दैहिक, मानसिक आर्थिक और सामाजिक शोषण किया गया।
- अक्करमाशी यानी तथाकथित अवैध संतान के गहन मानसिक अंतर्द्वन्द्वों, अकेलेपन के अवसाद और उन संकल्पों से जिनके चलते वह विशिष्ट बनता है।
- मराठी दलित आत्मकथनों की परंपरा के बीच 'अक्करमाशी' की मौजूदगी से।
- भारतीय गाँवों की बसावट और उनमें मौजूद दलित-भेद से।
- दलित स्वाभिमान की उठान और अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया से।
- दलित समाज की आंतरिक अस्पृश्यता से
- अनुष्ठानमूलक और आचरणहीन धार्मिक मान्यताओं से जिनके कारण साम्प्रदायिक कट्टरताएँ परवान चढ़ती है।
- 'अक्करमाशी' के माध्यम से दलित संघर्ष परिणतियों और बदलावों के स्फुलिंगों से। आइए, इकाई का और भी विस्तार से अध्ययन करें।

14.2 प्रस्तावना

अस्पृश्यता और अमानवीयता को ही दलित जीवन के लिए स्वाभाविक व्यवहार समझने वाली भारतीय जीवन पद्धति के सामने दलित चेतना ने सवालों की लंबी फेहरिश्त पेश की। ये सवाल एक तरफ दलितों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक बहिष्करण से जुड़े थे तो दूसरी तरफ उन लाखों तथाकथित अवैघ संतानों की मनःस्थितियों से भी जुड़े थे जिन्हें कदम-कदम पर सवर्णों ही नहीं दलित समाज से भी प्रताड़ित होना पड़ता था। दलित आत्मकथनों की आवाज इस मायने में विलक्षण थी कि उनमें काल्पनिकता की वायुवीय उड़ान की बजाय उन हृदयविदारक परिस्थितियों का मार्मिक साक्षात्कार था जो दलितों के जीवन की अनिवार्य स्थितियाँ थी। दरअसल ये आत्मकथन सहानुभूति की मानवीय संवेदना की बजाय आपबीती की मर्मांतक अभिव्यक्ति थे। सुपरिचित दलित चिंतक विमल थोरात का यह कहना बिल्कुल सही है कि 'मानवता को शर्मसार करने वाली धर्म रीति, रूढ़ि का संवर्धन करने वाले ब्राह्मणवाद की चीरफाड़ है दलित आत्मकथन।' दलित आत्मकथनों ने एक ऐसे भारत को विमर्श के केंद्र में ला खड़ा किया है जिसकी सच्चाइयों से निरंतर मुँह मोड़ा गया। लेकिन दलित लेखक भला इन हृदय विदारक सच्चाइयों से कैसे मुँह मोड़ सकता था जो स्वयं उसके जीवन का अनिवार्य हिस्सा थी। इसीलिए दलित आत्मकथनों ने निजी प्रसंगों और व्यवहारों की कसौटी पर समाज को रख दिया है। उनके सवालों से निरंतर मुँह चुराते और पीछा छुड़ाते समाजों के पास बचाव के बहुत कम रास्ते हैं। क्योंकि किसी इतिहास और संस्कृति का मुलम्मा तब उतरता है जब हाशिए के लोग उसमें अपनी

जगह को तलाशते है। दरअसल आत्मकथन वेदना और यथार्थ का वह अग्निपुँज है, जिसमें झूठ और षडयंत्र के मिथ्या भवन झुलस रहे हैं। आत्मकथनों की दुनिया में 'अक्करमाशी' ने एक युगांतकारी प्रभाव निभाया। इस प्रभाव का मूल्यांकन अनेक संदर्भों में संभव है।

14.3 मराठी दलित आत्मकथन और अक्करमाशी

मराठी दलित आत्मकथनों की परंपरा में जिन दलित आत्मकथनों ने समझ और संवदेना के नये शिखरों का निर्माण किया। उनमें 'बलूतं' (लेखक-दया पवार, हिन्दी अनुवाद 'अछूत', अनुवादक - दामोदर खडसे), 'उपरा'(लेखक-लक्ष्मण माने), 'आठवणीचे पक्षी' (लेखक-प्र.ई.सोनकांबले, हिन्दी अनुवाद-'यादों के पंछी', डॉ सूर्यनारायण रणसुभे), उचल्या लक्ष्मण गायकवाड़, हिन्दी अनुवाद, 'उठाईगीर', डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे), तराल-अंतराल (लेखक-शंकर राव खरात, हिंदी अनुवाद - डॉ प्रथमवीर), 'अक्करमाशी' (लेखक-शरण कुमार लिंबाळे, हिन्दी अनुवाद-सूर्यनारायण रणसुभे), 'जीवन हमारा' (लेखिका-बेबीताई कांबले), 'माइया जलमाची चित्तरकथा' (लेखिका-शांताबाई कांबले), 'दोहरा अभिशाप' (लेखिका-कौशल्या बैसंत्री), मरणकळा (लेखिका-जनबाई गिर्‌हे, हिन्दी अनुवाद-मरण वेदना) जैसी रचनाएँ खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। दलित आत्मकथन पारंपरिक साहित्यिक समझ के अनेक प्रहारों का केंद्र बने। लेकिन सच्चाई के बेलौस चित्रण और मानवतावादी समझ के बल पर ये आत्मकथन पाठकों के बीच न सिर्फ खासे लोकप्रिय साबित हुए अपितु दलित मुक्ति प्रसंग के अनिवार्य संदर्भ भी बने। दलित स्त्री आत्मकथन एक और विशेष संदर्भ के कारण पाठकों के बीच चर्चित हुए। इनमें न केवल गरीबी और जातिदंश का चित्रण हुआ, बल्कि इनमें स्त्री त्रासदियों का भी मारक वर्णन हुआ।

इन आत्मकथनों के बीच 'अक्करमाशा' की मौजूदगी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है, इस इकाई में यह संदर्भ विस्तार से विश्लेषित होगा। 'अक्करमाशी' यानी जारज पुत्र, अवैध संतान या भदेस भाषा में कहें तो दोगला वह भी दलित। यह आत्मकथन इस अवैध संतान की मर्मांतक पीड़ा, संघर्ष और मुकाम हासिल करने की विलक्षणता का दुर्लभ आख्यान है।

14.4 शरणकुमार लिम्बाले का रचना-संसार

शरणकुमार लिंबाले मराठी दलित साहित्य मे शिखर पर पुरूष रचनाकारों में शुमार किये जाते हैं। उनका जन्म महाराष्ट्र में जून 1956 में हुआ। शिक्षा एम.ए, पीएच-डी तक हासिल की है। जीविकोपार्जन के विभिन्न अनुभवों के बाद फिलहाल वे विद्यार्थी कल्याण विभाग, यशवंतराव चव्हान महाराष्ट्र ओपेन यूनविर्सिटी, नासिक में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं - 'अक्करमाशी' (आत्मकथन), देवता आदमी, 'दलित ब्राह्मण' (कहानी संग्रह) 'हिन्दू', 'नरवानर' (उपन्यास), दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (आलोचना पुस्तक)।

14.5 उम्र की उठान : सुख के द्वीप और अंतहीन दुख

आत्मकथन 'अक्करमाशी' में मुख्यधारा में बहिष्कृत, अपमानित और लांछित दलित जीवन की बेइंतहा दर्द की गिरफ्त में कैद जिस नायक की आपबीती का साक्षात्कार है वह कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। आत्मकथन का नायक न केवल वर्णश्रेष्ठता के अत्याचारों और सामंती उत्पीड़न का शिकार है, वह अक्करमाशी (तथाकथित अवैध संतान) होने के चलते दलितों के बीच भी उपेक्षा और घृणा का पात्र बनता है। उसे अकेलेपन के दर्द से गुजरना पड़ता है। उम्र की उठान के साथ पीड़ा के अंतहीन विस्तार के साथ-साथ कहीं-कहीं सुख द्वीपों का भी अहसास होता है। इन संदर्भों को और भी विस्तार से देखने की जरूरत है।

14.5.1 ज्ञान के दुर्ग में बहिष्करण की प्रक्रिया

समझ आदमी के जीवन में अस्मिता - निर्माण का सबसे बड़ा कारक होता है। अस्मिताबोध से संपन्न व्यक्ति गुलामी और अपमान भरे जीवन से न सिर्फ असहमत होता है बल्कि ऐसी परिस्थितियों का प्रखर विरोध भी करता है। ज्ञानार्जन की प्रक्रिया की स्वाभाविक फलश्रुति है - अस्मिताबोध का निर्माण। सवर्णपोषक व्यवस्था ने दलितों को ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से दूर करने के लिए अनेक हथक़ड़ों का इस्तेमाल किया। इन्हीं हथकंडों में एक था ज्ञान के सार्वजनिक जीवन में बहिष्करण। शरण अपने जीवन के इस पक्ष का मार्मिक वर्णन करते है। स्कूली जीवन की उन दिनों को याद करते हुए कहते हैं - 'बनियों तथा ब्रह्मणों के लड़के कबड्डी खेल रहे थे। हम अछूत बच्चे उनसे अलग-अलग ही बैठे थे। मल्या, मारत्या, उंबर्‌या, परश्या, चंदया आदि छूना-पानी का खेल शुरू कर चुके थे। दलितों का खेल अलग, सवर्णों का खेल अलग। दो-दो खेल दो-दो आँधियों की तरह।'

बनिए, ब्राह्मण, मारवाड़ी -मुसलमान, सुनार, ठाकुर, जाट आदि जमात के सौ लड़के, शिक्षक और लड़के बरगद के पेड के नीचे, खाने के लिए बैठे-गोलाकार में। और हम अछूत बच्चे-बच्ची अलग पेड के नीचे। श्लोक के साथ उन्होंने खाना शुरू किया। हम उस श्लोक का अर्थ भी नहीं जान पाए। प्रकृति के उपहार को हासिल करने में भी भेद-भाव का आलम। बकौल लेखक - 'हमारा पेड़ भी छितराया हुआ था, हमारी ही तरह। हवा का झोंका आता कि धूप लगी। गरम हवा का एहसास होता।' बाद में सवर्णों का जूठन दलित बच्चों को दिया गया, जिसे अर्से से भरपेट भोजन से महरूम दलित बच्चों ने खूब चाव से खाया। अगले दिन जब वन भोज पर निबंध लिखने के लिए कहा गया, तब लेखक को जो महसूस हुआ, वह बेहद मार्मिक है, 'क्या लिखूँ, समझ में नहीं आ रहा था। वन-भोजन का वह दृश्य आखों के सामने आया। वे कतारें, अलग-अलग बैठने की योजना, हमारा स्पर्श न हो इस भय से - परोसने वाली वे लड़कियाँ, वह छितराया हुआ पेड, कागज में बाँधकर दी गयी वह जूठन, माँ तथा शिक्षक द्वारा पूछे गये प्रश्न। कहाँ से शुरू करूँ निबंध?' संवेदनशील महार जाति के द्वारा मन में सवालों की लंबी फेहरिश्त उभरती। उसे लगता कक्षा में पढ़ाया जाता था कि बच्चे ईश्वर द्वारा निर्मित फूल हैं। तो क्या हम भगवान द्वार निर्मित फूल नहीं है? वास्तव में, हम लोग गाँव के बाहर फेंके गये कूडे-कचरे की तरह थे। एक ही स्कूल में अनेक जाति की इकाइयाँ थी। दलित भेद को बदस्तूर जारी रखने की व्यवस्था स्कूल में मजबूती से निभायी जाती। शरण की आँख को इस तरह के दृश्य दिखते, और वह बेचैन होता, 'जब स्कूल मारवाडी की कोठी में लगता तो मैं बेठक के नीचे बैठता। लड़के-लड़कियाँ ऊपर बैठते। शिक्षक और ऊँची जगह पर बैठकर के सवर्णों के लड़कों को गणित समझाते। हम नीचे जुतों की तरफ बैठे रहते। सभी ओर चप्पल और जूते। शिक्षक की चप्पलों को मैं छूता तक नहीं था। सोचता, चप्पलों को छूत लग जायेगी।' इस तरह की विभेदमूलक परिस्थितियाँ सामान्यता पूरे भारतीय समाज में पायी जाती हैं। आख्यान की विलक्षणता इस बात में है कि परिस्थितियाँ शरण में विद्रोह और संकल्प के बीज को बोती चली जाती है। दरअसल ऐसे संकल्प की विराट बदलाव और सामूहिक विवेक निर्माण के मुखर और प्रखर सहयात्री की भूमिका निभाते हैं।

14.5.2 भूख सबसे बड़ा सच

'अक्करमाशी' के नायक को बार-बार यह अहसास होता है कि दलित जीवन की सबसे बड़ी त्रासद भूख है। जहाँ सवर्ण समाज तृप्ति के शिखर पर, वहीं दलित जीवन पर सदैव मंडराती भूख की अंतहीन कालिमा। भूख से ऐठती अंतडियों की अकुलाहट बढ़ जाती जब शरण को लगता, 'कि ईश्वर ने पेट देकर गलती की है। नानी संतामाय की वात्सल्य भरी दुनिया में भूख को शामिल करने के लिए अक्सर जो विधि अपनायी जाती वह किसी भी

मानवीय समाज के लिए दारूण अभिशाप है। फसल के दिनों में जब जानवर ज्यादा खा लेते तब गोबर में ज्वार के जैसे अनाज के दाने भी निकलते। संतामाय के साथ गोबर समेटने वाला शरण उन्हें गोबर से दाने निकाल कर भूख से लड़ने की तरकीबें ढूँढते देखता। उन दिनों को याद करते हुए लेखक लिखते हैं, 'गोबर से निकले दाने पीसने के बाद संतामाय उठतीं। कड़ी धूप तथा बंजर धरती पर घूम आयी संतामाय का चेहरा तथा बदन सुखा हुआ होता। भूख को मारने की आदि हो गयी है वह।' पर ऐसे अवसर कम ही आते जब भूख मिटाने का कोई-न-कोई इंतजाम होता। बिन खाये सोना जैसे परिवार की नियति हो गयी थी शरण कहते हैं, 'अन्न का अभाव तो मैं बचपन से ही महसूस करता रहा हूँ। सभी बहनें भूखी सो जाती। उन्हें खाने के लिए कोई जगाता भी नहीं था। क्योंकि रोटियाँ ही नहीं होती थी।.. माँ केवल पानी ही पी लेती। दादा बीड़ी पीकर भूख को जलाते।' भूख से लड़ते दलित अवैध शराब बेचते। भूख से पीड़ित शरण का परिवार नारकीय जीवन गुजारता। आत्मकथन का यह वर्णन कितना मार्मिक है, 'घर पर ग्राहक हमेशा आते। ... पीकर वही कै करते। उस कै की दुर्गन्ध फैलती। वे क्या-क्या खाकर आते, यह उनमें दिखता। और यह सब देखते है हम खाना खाते।' और जब पुलिस के भय से यह साधन भी खत्म, तब चोरी और शिकार ही सहारा होता, 'पेट की आग बुझाने के लिए हम लोग नदी - नालों के किनारे घूमते। केकड़े पकड़ते। मछलियाँ पकड़ते। मधुमक्खियों के छत्ते निकालते। बगुलों को पकड़ते। खरगोशों का शिकार करते। गोह निकालते। गिलहरियाँ भूनकर खाते। ...मूँगफलियों की चोरी करते।' भूख की त्रासदी और उनके संधान के अनेक मार्मिक प्रसंग अक्करमाशी को एक मार्मिक कृति बनाते हैं।

14.6 भारतीय गाँव और दलित भेद

दलित-भेद और दलित-उत्पीड़न की दृष्टि से यदि हम भारतीय गाँवों को देखें तो अमानवीयता और क्रूरता के दिल दहला देने वाले पक्ष हमारो सामने आते हैं। 'अक्करमाशी' में आत्मकथा लेखक ऐसी अनेक परिस्थितियों का वर्णन करते हैं। इन वर्णनों में मौजूद सूक्ष्म दृष्टि विशिष्ट और उल्लेखनीय है। जातियों की बसावट, अछूतों के बीच काम के बँटवारे, अकाल की भयावहता जैसे अनेक प्रसंग इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। पर इन सबके बीच सर्वाधिक महत्वपूर्ण है लेखक के मन में उठने वाला संकल्प और विवेक। प्रसंगों को और भी विस्तार से समझा जा सकता है।

14.6.1 भारतीय गाँव और दलित भेद

आबादी की बसावट की एक खास व्यवस्था भारतीय गाँवों में मौजूद है। परंपरा से दलित जातियाँ प्रायः गाँव के दक्षिण में बसायी जाती रही है। साथ ही इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि सवर्ण श्रेष्ठता का पालन हर लिहाज से हो। जमींदार के साथ सभी सवर्ण दलित बस्ती में तभी आते, जब कोई जानवर मर जाता और उसकी लाश को दलितों से उठवाना पड़ता। या फिर यौन स्वैराचार के लिए दलितों की बस्ती में सवर्ण चक्कर लगाते। दलितों को हाडतोड़ मेहनत के बावजूद फाकेमश्ती का शिकार बनना पड़ता। जानवारों का मरना दलितों के लिए उत्सव की तरह होता। बकौल लेखक, 'जिस महीने में जानवार अधिक मरते थे, महारों के लिए वह खुशी का महीना होता था। जिस महा में जानवर नहीं मरते ही नहीं, वह महीना अकाल की तरह लगता।' गाँव के स्कूल में भी दलित-भेद को बदस्तूर जारी रखा जाता। प्रकृतिप्रदत्त उपहारों में भी यह खास व्यवस्था होती कि उसका इस्तेमाल इस तरह हो कि दलितों के हिस्से अपशिष्ट ही पहुँचे। शरण कहते हैं, 'एक दिन में नदी के बीच, पानी में खड़े होकर पानी पी रहा था। किसी माँ न अपने छोटे बच्चे का मैले भरा कपड़ा शायद धोया था। उसी मैले का सैलाब मेरे नजदिक आ रहा था। उबकाई आयी, पर कहूँ किससे? और फिर जल से अधिक पवित्र कौन सी वस्तु है? सवर्णों के

घाट से आये गंदे पानी को हम लोग पचा रहे थे।' ऐसी लोमहर्षक स्थितियों का वर्णन 'अक्करमाशी' की प्रभावक्षमता को यथार्थबोध के विशिष्ट तेवर से संपन्न करता है।

14.6.2 अछूतों के बीच काम का बँटवारा

'अक्करमाशी' का नायक महार जाति का है। वर्ण-व्यवस्था प्रदत्त कार्य-व्यवस्था में महारों के लिए मरे हुए जानवारों के चमड़े का व्यवसाय निर्धारित है। लेखक ने विस्तार से चित्रित किया है कैसे महारों के बीच काम का बँटवारा होता था। इस काम के बदले सवर्णों द्वारा ज्वार या अन्य आसानी से उपलब्ध अनाज दिया जाता था। लेखक ने केवल काम के बँटवारों का चित्रण कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं की है। वह इस सिलसिले में सवर्ण पाखंड का भी उद्‌घाटन करता है। गोपूजन को सर्वश्रेष्ठ अनुष्ठान मानने वाली तथाकथित पूज्य संस्कृति गाय की मौत के बाद अछूत महारों की खोज शुरू कर देते कि जल्दी से जल्दी मरे जानवर की लाश उठे। लेखक की प्रश्नवाचक मुद्रा है, 'हिंदू लोग गाय को माँ के रूप में पूजते हैं। माँ की मृत्यु के बाद उसका क्रिया - कर्म करते है, परन्तु इसी गाय की मृत्यु के बाद महारों को बुलाते है।' कहना न होगा यह तथाकथित सवर्ण व्यवहारिकता चरित्र की असलियत को बेनकाब करता हैं। महारों के काम के बँटवारें को 'पाडेवार' कहा जता है। 'पाडेवार' का अर्थ होता हैं -अछूतों के काम। नये वर्ा की शुरूआत में ही काम का बँटवारा कर दिया जाता। जानवरों के शरीर के विभिन्न अंगों का बँटवारा हैसियत के मुताबिक हाता। दारूण गरीबी के कारण अक्सर एंठने वाली आँतड़ियों की आग बुझाने के लिए अतिरिक्त माँस की बोटियाँ सुखाकर रख दी जाती, जिन्हें 'चानी' कहते थे। अस्पृश्यता बपचन में ही कैसे परवान चढ़ती है। इसका चित्रण लेखक ने इस संदर्भ में बेबाकी से किया। लेखक उन दिनों को याद करते हुए कहते हैं 'मैं जब स्कूल गया तब गाँव के बच्चे उंबर्‌या, मारूति को परेशान कर रहे थे। 'धेड'-'धेड' (सर्वणों द्वारा दी जाने वाली गाली) कहकर चिल्ला रहे थे। मेरे अंदर जाने के बाद कहने लगे, 'लो एक और धेड आ गया। इसने हमारा बछड़ा खाया हे।' यह विरोधाभास ही है कि जिसके कारण सवर्णों की परेशानी दूर होती थी उन्हीं के बच्चों के साथ सवर्ण बच्चे आदतन दुर्व्यवहार करते थे।

14.6.3 विवेक की उठान और सवालों की सलीबें

दलित समाज की नारकीय विवशताओं को ग्रामीण रूढ़ियों के बीच उम्र के पतझड़ और वसंत का सामना करते हुए शरण ने विवेक के अनेक क्षितिजों का स्पर्श किया। कहना न होगा इस प्रक्रिया में उनके हमसफर के रूप में सवालों की अंतहीन सलीबें उनके साथ रहीं। ये सवाल कभी भाषा को लेकर होते तो कभी गाँव को लेकर, कभी जाति तो कभी धर्म। इन सवालों की कोख से उपजती विवेकसंपन्न दृष्टि। ब्राह्मणों का अपना इतिहास था तो शूद्रों की अपनी विरासत। बकौल शरण, 'मेरी माँ अछूत तो पिता सवर्ण! माँ झोंपड़ी में, पिता कोठी में! पिता ज़मींदार, माँ भूमिहीन। और मैं? 'अक्करमाशी!'

गाँव, भाषा, माँ, पिता, जाति, धर्म - इन सभी दृष्टियों से मैं खंडित था। गुमशुदा व्यक्तित्व लिए जीनेवाले मेरे अस्तित्व को जारत कहकर सतत अपमानित किया गया है। ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक सभी अपने खानदानी अभिमान और खानदानी अस्मिता के लिए जीते हैं। 'परंतु यहाँ मेरी अस्मिता पर बलात्कार हुआ।' महार जाति पारंपरिक भारतीय समाज में मरे हुए जानवरों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करती है। लेखक का मन इस रूढ़ि से संगति नहीं बैठा पाता। लेखक इस मनःस्थिति पर टिप्पणी करते हैं, 'धीरे-धीरे मुझे मृत जानवारों से घृणा होने लगी। मृत जानवर का माँस खाने वालों पर भी गुस्सा आने लगा।' भूख से मजबूर होकर चोरी या अन्य अपराध करनेवालों पर लेखक की समझ बनी, 'काले व्यवसाय करनेवाले नेता बन जाते हैं और भूख से मजबूर होकर चोरी करनेवाले गुनहगार।' हर कदम पर अस्पृश्यता का सामना करनेवाले लेखक के बाल बनाने के लिए नाई द्वारा

मना करने पर यह लगा कि, 'गाँव के भैंसों के भी बाल साफ करनेवाले उस नाई के लिए पता नहीं मैं क्यों अपवित्र था?' समाज की खंडित दृष्टि को लेकर लेखक के मन में गहरे असंतोष का भाव रहता था। अस्मिता के सवालों के संदर्भ में भी लेखक की प्रश्नाकुल मुद्रा मुखर थी। - 'यों मेरा बाप लिंगायत। उसके दादा-परदादा भी लिंगायत, इसलिए मैं लिंगायत! मेरी माँ अछूत, महार, इसलिए मैं भी दलित, अछूत! पर जनम से लेकर आज तक मुझ मेरे नाना ने मतलब महमूद दस्तगीर जमादार नामक मुसलमान ने पाला-पोसा है, इसलिए मैं मुसलमान! मैं मुसलमान क्यों नहीं, दादा की ममता मुझपर अपने धर्म का हक क्यों नहीं जताती?' इस तरह लेखक के सवाल उसके विवेक की ज़मीन तैयार करते हैं, जिसमें परिवर्तनकामी चेतना की अकुलाहठें सक्रिय थी।

14.7 दलित समाज की आंतरिक अस्पृश्यता

ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने भारतीय समाज को अस्पृश्यता का दर्शन दिया जिसकी जड़ में दलित समाज की आंतरिक व्यवस्था भी आ गयी। लेखक इनसे गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ था। इसके अनेक प्रंसग आत्मकथन में मौजूद हैं। मातंग भीमू को घाट पर पानी सांतामय द्वारा रोकने पर लेखक के मन में सवाल उठा- 'भीमू आदमी नहीं है क्या? फिर उसके स्पर्श से पानी अपवित्र कैसे हो जाएगा?' खेल के दौरान भी यह अस्पृश्यता बदस्तूर जारी रहती - 'इस खेल में मातंग के बच्चे आते। परतुं वे हमसे काफी दूर-दूर ही रहकर खेलते।' उसी तरह जब महारों के घर कोई माँगलिक अनुठान होते तो मातंग सरीखी जातियों से अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता!

14.8 यातना का जीवन : सुख-दुख का द्वंद्व

शरणकुमार लिंबाले के जीवन में सुख-दुख के अनेक अहसास शामिल थे। सुख-दुख के उन प्रसंगों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों के देखना आवश्यक है। इकाई अध्ययन क्रम में कुछ अंशों से आप परिचित भी हो चुके हैं। प्रेम, अक्करमाशी होने की पीड़ा, जन्म की कहानी और परिवार का सच, वर्णश्रेष्ठ का यौन-व्यभिचार और दलित पीड़ा जैसे कुछ प्रसंगों पर एक निगाह डालना लाजमी होगा।

14.8.1 प्रेम का बसंत

यातना भरे जीवन में प्रेम का सुखद अहसास शरण के लिए अविस्मरणीय घटना थी। शरण की बस्ती में रहने वाली शेवंता उस समय दस-बारह साल की थी। उसका विवाह हो चुका था, गौना अभी बाकी था। नारकीय जीवन के बीच शेवंता का आना शरण के लिए अलग तरह का अहसास था, 'जिस दिन शेवंता की आंखों से परिचय हुआ। उन दिनों बेचैनी भी खूबसूरत लगने लगी। ... वह जब घर में होती, मैं सीटी बजाता। गाना गाता। मेरी आवाज़ सुनकर झोंपडे से बाहर आती। ...शेवंता पानी लेने के लिए आयी मैंने उस पर पानी उछाला, जैसे फूल हों। उसके चेहरे पर, बालों पर खाली हो जाऊँ। उसके साथ खेलू। वह भी पानी उछाले और फिर हम दोनों इन्द्रधनुष के पीछे छिप जाएँ।' प्रेम के आत्मीय क्षणों की खबर जब बस्ती के लोगों को पता चली तब संतामाय ने शरण को नसीहत दी कि वह शेवंता को भूल जाए। वक्त बीतता गया और एक दिन शेवंता अपने पति के घर चली। जब शरण ने उसे बस स्टैंड पर गर्भवती होकर वापस मायके आते देखा तब उसे लगा, 'यों हम दोनों भी चाह रहे कि बाँहें डालकर खूब रो लें। ...किसी के लिए जीना, यह भाव ही जिंदगी को जीवंतता प्रदान करता है।' शरण जब शोलापुर पढ़ने गये, तब अक्सर वहाँ घरों में झाडू - पोंछा कर गुज़ारा करने वाली शेवंता दिख जाती। वह अक्सर रास्तें में मिलने पर दस पैसे शरण को देकर यह कहती मेरे नाम पर चाय पी लेना। धीरे-धीरे प्रतिकूलताओं

के बीच शेवंता से प्रेम कब रूखसत हुआ पता नहीं चला और उसका स्थानापन्न हुआ शरण से कुसुम से विवाह से उपजा दांपत्य-प्रेम।

14.8.2 अक्करमाशी होने का अहसास

हणमंता लिंबाळे और मसाई के बेटे शरण के जीवन की सबसे बड़ी पीड़ा और विड़बना थी, 'अक्करमाशी' होने का कारूणिक अहसास। हणमंता को यह कतई मंजूर नहीं था कि शरण के साथ उसका नाम जुड़े। इस संपत्ति के उतराधिकार में शरण का दावा हो यह मंजूर नहीं था। अपने द्वंद्व को शरण ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है। बकौल शरण, 'मेरे जन्म के साथ ही पटेल और ज़मीनदारों की तमाम खानदानी कोठियाँ बेचैन हुई होंगी। मेरे प्रथम उच्छवास से दुनिया की नीति घबरा गयी होगी। मेरे क्रंदन से तमाम कुंतियों की छाती से दूध निकल आया होगा। ... मेरे जन्म के बाद किसने बाँटी होगी मिठाई? किसने लाड किये मुझ पर? किसने दी होगी साडी-चोली मेरी माँ को? किसने किया होगा मेरा नामकरण संस्कार? मेरा खानदान कौन-सा? मैं किस वंश का दीया? किस अधिकारी पिता का मैं पुत्र?'

एक स्थान पर उन्होंने लिखा, मैं मनुष्य था। सिवा मनुष्य शरीर के मेरे पास था ही क्या? यहाँ इस देश में मनुष्य जाति-बिरादरी और धर्म से पहचाना जाता है। बाप से पहचाना जाता है। मेरे पास बाप का नाम नहीं, धर्म और जाति नहीं है, न मैं किसी बाप का उत्तराधिकारी हूँ' । तात्पर्य यह है कि लेखक को कदम-कदम पर अक्करमाशी यानी जारज पुत्र या तथाकथित अवैध संतान होने की पीड़ा का समाज द्वारा अहसास कराया गया।

अक्करमाशी अवधारणा का संबंध दलित जीवन से है। लेखक केवल पीड़ा की कहानी कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर देता। वह समाज व्यवस्था की वैचारिकी से हमें रू-ब-रू कराना नहीं भूलता।

14.8.3 पिता का नाम मिलने की कहानी

जब शरण का दाखिला स्कूल में हुआ तब पहली बार दस्तावेजों में पिता का नाम लिखने की ज़रूरत महसूस हुई। अध्यापक भोंसले गुरू ने इस सिलसिले में शरण की माँ मसाई से बात की और पिता के नाम की जगह हणमंता लिंबाळे का नाम लिखा। इसके बाद जमकर हंगामा हुआ और हणमंता ने नाम न लिखने के लिए रिश्वत की पेशकश भी की गयी। इस पूरे वाकये को याद करते हुए शरण कहते हैं, 'स्कूल में मेरे नाम के आगे हणमंता लिंबाळे का नाम लिखा गया। कहीं से हणमंता को इसका पता चल गया। चार-पाँच लोग लिए वह तुरंत हन्नूर आया। गाँव के दोस्तों और बिरादरी के लोगों को साथ लिए वह हेडमास्टर से मिला। उन दिनों भोसले गुरुजी हेडमास्टर थे। शिक्षकों का वेतन सत्तर रूपये था। हाथ में सौ का नाट लेकर हणमंता भोंसले गुरूजी के पास गया। बंदूक का डर भी दिखा रहा था। पर भोंसले गुरूजी जबर्दस्त व्यक्ति थे। निर्भीक। उन्होंने दृढ़ शब्दों में कहा, 'इस लडके का बाप कौन है, यह इसकी माँ बतलाएगी और उसके द्वारा बतलाया गया नाम ही मैं हाजिरी रजिस्टर में लिखूँगा।' झगड़ा हुआ। हणमंता ने बहुत कोशिश की। गिडगिड़ाने लगा। पर कुछ नहीं हो सका। भोसले गुरूजी के कारण मुझे पिता का नाम मिल गया।' इस तरह एक निर्भीक अध्यापक की साफगोई ने शरण की दस्तावेज़ी ज़िंदगी में पिता का नाम मिला।

14.9 यंत्रणा के कुछ और अनुभव खंड

शरण के जीवन की उठान में स्याह और सफेद पृष्ठों के अन्य अनेक प्रसंग भी जुड़े। जीवन के व्यावहारिक प्रसंगों में पिता की गैर मौजूदगी के बीच नाना महमूद दस्तगीर और नानी

संतामाय के स्नेहिल संसार का आसरा, विवाह की अडचनें और वैवाहिक जीवन में दुख के सैलाब आदि संदर्भ इस सिलसिले में उल्लेखनीय हैं। जीवन विकास के क्रम में लेखक का गाँव और शहर के ध्रुवांतों का महसूस करना एवं उनके द्वारा आर्थिक स्थिरता के लिए किये गये प्रयासों को भी देखा जा सकता है।

14.9.1 लहूलुहान जीवन और नाना की मौजूदगी

लेखक के अभावमय जीवन में नाना जिसे वह दादा भी कहता था की मौजूदगी ने उम्मीद के नये अहसासों को संभव किया। संतामाय यानी लेखक की नानी ने लेखक को माँ से बढ़कर स्नेह का आँचल दिया। पहली पत्नी के भाग जाने के बाद महमूद जमादार संतामाय के साथ रहने लगा। महमूद बस में हमाली का काम करता था। दादा की याद करते हुए लेखक कहते हैं, 'जाति-बिरादरी के परे जाकर उन्होंने मुझे प्यार दिया। अपने बच्चों की तरह उन्होंने मेरी देखभाल की।' दादा परिवार यानी संतामाय और भारण के भरण-पोषण के लिए कड़ी मेहनत करते। मेहनत के वक्त उन्हें तन मन की सुध तक नहीं रहती। दादा बेसब्री से बस का इंतजार करते। एक गठरी के लिए दस पैसे की हमाली मिलती। शनिवार और रविवार को जब हमाली नहीं मिलती तो दिन और रात पहाड की तरह गुज़रते। सोमवार को अक्कलकोट का बाज़ार लगता। उस दिन इतनी हमाली मिलती कि बुधवार तक का खर्च चल जाता। अभाव पीड़ित दादा मुझे लाकर देते। दस पैसे की चाय हमारे लिए बहुत कीमती लगती। इन दस पैसों के लिए दादा मौत के वजन ढोते।' एक तरफ दादा और संतामाय का अविस्मरणीय स्नेहिल साथ तो दूसरी तरफ सगी माँ की दारूण बेरूखी। शरण उन दिनों को याद करते हुए लिखते हैं, 'मसा माँ - सगी माँ - मुझसे सौतेली माँ का व्यवहार करती। इसी कारण मैं संतामाय का हो चुका था। मसा माँ मुझे पीटतीं तो संतामाय मुझे छुडाती। फिर दोनों झगड़ती। एक बार मुझे लेकर दोनों में खूब झगड़ा हुआ। परिणामतः संतामाय ने महारों की बस्ती में रहना ही छोड़ दिया। स्टैंड पर रहने आयीं। वही हमाली करते, वहीं खाते, वहीं सोते।' स्नेह की इस दुनिया में संतामाय और बाबा भले भूखे रह जाएँ पर शरण भूखा न रहे, इसकी पूरी कोशिश होती। इस संदर्भ में एक कारूणिक प्रसंग को याद करते हुए शरण कहते हैं, 'उस दिन संता माय ने बहुत देर तक चूल्हा नहीं सुलगाया। बची हुई एक रोटी हम तीनों कैसे खाते? मुझे तो भूख लगी थी। संतामाय ने आटे का डब्बा दिखाया। कहने लगीं, 'आटा है' बाद में रोटी बनाऊँगी। तू खा ले। हमारी चिंता मत कर।' मैंने डब्बा उठाकर देखा। वजनदार लगा। लगा कि अनाज पीसकर लायी होगी। इसलिए मैंने बची हुई रोटी खा ली। पेट भर कर पानी पी गया। संतामाय बाहर निकल गयी। मैंने आटे का डिब्बा खोलकर देखा। भीतर आटा नहीं था। थे दो पत्थर। डब्बा वज़नदार लगे, इसलिए पत्थर रखे गए थे।' स्नेह संसार के अन्य अनुभव खंड भी आत्मकथन में सम्मिलित हैं।

14.9.2 विवाह की अडचनें

पांरपरिक समाज में 'अक्करमाशी' का विवाह अनेक तरह की कठिनाइओं का कारक था। शरण की मुश्किलें थीं ऐसी जो पीछा ही नहीं छोड़ रही थीं। सबसे बड़ी समस्या थी शरण का अक्करमाशी होना। दूसरी तरफ एक युवती ऐसी थी जो मातंग समाज की थी और जिसके पिता पटेल समाज के थे यानी वह भी अक्करमाशी थी। वह लड़की डफली बजाकर अपना जीवन गुजार रही थी। उसकी माँ मसा माँ की सहेली थी। सहेली शराब बेचने का काम करती थी। जब कोई ग्राहक आता तो वह पूछती, 'मैं पटेल की रखैल के लड़के हैं क्या लडकी के विवाह के लिए?' 'लड़की का पिता था मयाप्पा लिंबाळे । उसके माली हालत ठीक नहीं थी। लेखक ने अनेक प्रसंगों में आर्थिक सहायता की। वह रूपए वापस करने का आश्वासन देता, पर वापस नहीं कर पाता। वह बार-बार शराब के लिए

रूपए माँगता। एक बार तो शरण ने अपनी शिष्यवृत्ति के रूपए भी दे दिये। शरण आगे की एक घटना का उल्लेख करते हुए बताते हैं, 'वह मुझे मिला और मेरे विवाह की बात उसने निकाली। वह अपनी लड़की मुझे देना चाहता था। लड़की न देखते हुए भी मैंने हाँ कर दी, क्योंकि मुझे कोई लड़की दे नहीं रहा था।' शरण की शादी कुसुम से तय हो गयी। कुसुम के भाई समेत अनेक लोगों ने इसका विरोध किया। विभिन्न बाधाओं के बावजूद शादी हो गयी। शरण के न चाहने के बावजूद विवाह में हिन्दू अनुष्ठान हुए। शरण ने चीख-चीख कर कहा हम बौद्ध पद्धति से विवाहबद्ध होने वाले हैं। इसलिए हम पर जिनका स्नेह हैं, वे यहाँ से लौटे नहीं।' कुछ अथिति रूके, पर विस्थापितों की तरह।

14.9.3 वैवाहिक जीवन में दुख और उनसे मुक्ति

शादी के बाद भी समस्याएँ थमीं नहीं। सास ने विदाई नहीं की। कुसुम को शरण के साथ यह कहकर भेजने से मना कर दिया कि शरण के घर पर शराब बेची जाती है, वहाँ लोगों की चाल-चलन ठीक नहीं है। दूसरी तरफ शरण के घर में भी कई तरह की प्रतिक्रियाएँ होती। मसा माँ कहती, 'तू उसे कभी लेकर मत आ। पड़ी रहने दे। मायके में ही सडने दे।' संतामाय कहतीं, 'शादी हुयी है ना'। एक बार उसके पास सोकर आ।' ससुराल के लोग कहते जब नौकरी लगेगी तब कुसुम को ले जाना। शरण बार-बार ससुराल जाते पर वहाँ इस मुद्दे पर सिवाए झगड़े के और कुछ नहीं होता। एक और समस्या यह भी थी कि दादा के धर्म को लेकर कहा जाता कि मुसलमान रिश्तेदार कैसे हो सकता है? एक दिन विदायी के मुद्दे पर शरण की अपने सास ससुर से काफी लड़ाई हुई। शरण उस दिन निश्चय कर चुके थे पत्नी कुसुम ने भी साथ दिया। वे अपनी पत्नी को साथ लेकर आए। कुछ दिन बाद ही शरण की नौकरी अहमदपुर में टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में लग गयी। फिर शोलापुर तबादला हो गया। लंबे समय तक शरण ने सामाजिक यंत्रणा के भय से अपनी जाति छुपायी। लेकिन धीर-धीरे वे इस व्यामोह से मुक्त हो गये। बेटा हुआ और उसका नाम रखा गया - 'अनार्य'। तथाकथित परंपरा और धार्मिक रूढ़ियों को ढोने वाला समाज और इन्हे बदस्तूर महिमामंडित करने वाले विशेषाधिकार प्राप्त लोगों से शरण कुमार लिंबाळे आत्मकथन के अंत में साफ-साफ सवाल करते हैं - 'मेरे जन्म को ही अगर अनैतिक घोषित किया गया हो तो मैं किन नीतियों का पालन करूँ? कहना न होगा यह आग मुक्ति के सिंहद्वार के बाहर की है जिसके आगे सच्ची मनुष्यता की निर्बाध कुलांचे हैं।'

14.10 सारांश

शरण कुमार लिंबाळे के आत्मकथन 'अक्करमाशी' से गुजरते हुए जिन स्थितियों से हम रू-ब-रू होते हैं वे हमें अक्करमाशी होने की पीडा, पारंपरिक, वर्णवादी समाज, उत्पीड़न के यातनामय पहलुओं, भूख की नारकीय यंत्रणा, दलित जाति की वह विसंगतिपूर्ण समझ जो अनेक बार बदलाव के बयार को बाधित करती है, दलित मुक्ति के परिवर्तनकारी चिंतन आदि से परिचित कराती है। अगले अध्याय में हम विंडबनापूर्ण अक्करमाशी जीवन और वर्ण-जाति मूलक भारतीय समाज के उत्पीड़ित श्रमशील बहुजन के उन चिंतनपरक पहलुओं का अध्ययन करेंगे जिन्हें हम 'अक्करमाशी' की यात्रा से अर्जित करेंगे।

इकाई 15 अक्करमाशी-II

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 यथास्थितिवादी दर्शन के बीच दलित

15.3 सवर्ण दलित संबंध : अमानवीयता का समाजशास्त्र

15.4 यातना के पिंजरे से मुक्ति का अहसास : अक्करमाशी

15.5 दलित आत्मकथन, अक्करमाशी और विरोधी मत

15.5.1 आरोपों की मुखरता और प्रतिपक्ष का दर्शन

15.5.2 अक्करमाशी का पक्ष

15.6 प्रतिशोध का दर्शन और विद्रोह

15.7 विचार की चौहद्दी में आरक्षण का सवाल

15.8 दलित संघर्ष की परिणति और बदलाव के स्फुलिंग

15.9 सारांश

15.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप दलित आत्मकथनों की दुनिया में विशिष्ट पहचान रखने वाली रचना 'अक्करमाशी' के विभिन्न अनुभव सन्दर्भों से परिचित हुए। अब आवश्यकता इस बात की है कि 'अक्करमाशी' की वैचारिकी और उसमें मौजूद सैद्धान्तिकी से रू–ब–रू हुआ जाय। यथास्थितिवादी सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि में दलित आत्मकथनों का संसार कलाविरोधी और गैरसाहित्यिक है। लेकिन नयी समझ और समकालीन रचना परिदृश्य का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय साबित कर दिया। इस अध्याय के अध्ययन के बाद 'अक्करमाशी' के आलोक में आप परिचित होंगे –

- यथास्थितिवादी परिस्थितियों के बीच अभिशप्त दलित जीवन की विडंबनाओं से;
- सवर्ण–दलित संबंधों में मौजूद अमानवीयताओं से;
- यातना से मुक्ति के तेवरों से संपन्न साहित्यिक अभिव्यक्ति से;
- दलित आत्मकथनों पर यथास्थितिवादी सौन्दर्यशास्त्र द्वारा लगाये गये आक्षेपों और उनकी असलियत से;
- प्रतिशोध और विद्रोह के दर्शन से; और
- दलित संघर्ष की परिणाति और बदलाव के स्फुलिंग से।

15.1 प्रस्तावना

जरूरत इस बात की है कि 'अक्करमाशी' की विशिष्टताओं का अध्ययन करते समय उन संदर्भों की छानबीन की जाय जो दलित आत्मकथनों में पहली बार नज़र आयी हैं। ध्यान दें जो परंपरागत आत्मकथा लेखन परिदृश्य से अलग दलित आत्मकथनों की महत्ता अनेक संदर्भों में उभरी है। अनेक ऐसे समुदाय जो इतिहास की परिधि से बाहर थे जैसे 'दलित मनुष्य', 'दलित स्त्री' या 'अक्करमाशी' (अवैध संतान), उनके माध्यम से युगबोध ही नहीं, बल्कि उनका अतीत भी मुखर हुआ। इस तरह दलित आत्मकथनों ने अपने युग के साथ ही अपने अतीत का भी दस्तावेजीकरण किया। दलित आत्मकथाएँ एक और दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं। पहली बार 'सपनों' की जगह 'आकांक्षा' को स्थान मिला। पहले साहित्य में सपने मुख्य थे। सपनों का मूर्त आधार नहीं होता। आकांक्षाओं का मूर्त आधार होता है। दलित आत्मकथाओं में उदीयमान दलित समुदाय की आकांक्षाएँ मुखर हुई। उसी तरह दलित आत्मकथाओं में परंपरा से अलग 'भाषा के व्यावहारिक रूप' को स्थान मिला। साहित्य की भाषा के सर्जनात्मक रूप का अर्थ है – 'सपनों' और 'कल्पना' से युक्त संरचना का मुखर होना। तब 'आकांक्षा' और 'यथार्थबोध' की भाषायी संरचना का प्रयोग हुआ।

दलित आत्मकथनों की सैद्धान्तिकी की बात करते समय पुराने आत्मकथनों से अलगाव के एक और संदर्भ की चर्चा किए बिना बात अधूरी रह जाएगी। आमतौर पर आत्मकथाओं में लेखक अपनी दुनिया को अनन्य बनाने की मानसिकता से संचालित होता है। यानी जो लेखक ने भोगा और सहा है, उसे किसी और ने भोगा और सहा नहीं होगा। यह प्रवृत्ति उसे जीवन को एकांगी दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित और विवश करती है। लेकिन दलित आत्मकथाकारों की दृष्टि एकांगी नहीं होती, क्योंकि जब वे लिखते हैं या सोचते है तब समूचे दलित समाज की दृष्टि, उसका मान–अपमान, उसके सवाल, जद्दोजहद एक लेखक के सामने होते हैं। इसलिए दलित आत्मकथन केवल एक व्यक्ति के जीवन पर आधारित नहीं है, उसमें संपूर्ण दलित समाज क मौजूदगी भी है। 'अक्करमाशी' की वैचारिक पृष्ठभूमि और कथन शिल्प का मूल्यांकन करते समय उल्लिखित विशेषताओं के साथ अन्य विशेषताएँ भी नजर आती हैं। जिनका विस्तार से मूल्यांकन जरूरी है।

15.2 यथास्थितिवादी दर्शन के बीच दलित

सवर्णप्रेरित धर्मशास्त्रीय और नैतिक मान्यताओं के बीच जीवन गुजारते दलितों का अनुकूलन बेहद स्वाभाविक ढंग से हो, इसके लिए पुराणों और धार्मिक कथाओं का सहारा लेने की चालाकी है। इनके बीच इन्द्रजाल और उम्र के आकर्षण की परवान चढती अपनी योजनाएँ। तथाकथित वैयक्तिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विकास का जीवंत चित्रण करते हुए 'अक्करमाशी' का लेखक यह कहना नहीं भूलता कि, ऐसे समाज में दलित हित में विकास की कोई संभावना दूर–दूर तक नज़र नहीं आती। स्वयं लेखक के शब्दों में, 'मेरा बचपन मुझे अभी भी याद है। मेरे गाँव में प्रतिवर्ष सावन के महीने में पोथी पुराण बाँचे जाते। हर साल मेले के बहाने धार्मिक नाटक मंचित किये जाते। मेरे काका यशवंतराव पाटील सवर्ण और फिर गाँव के मुखिया। वे मुझे रामायण, महाभारत की कहानियाँ सुनाते। पढ़ने के लिए धार्मिक ग्रंथ लाकर देते। मेरे नाना महमूद दस्तगीर जमादार मुसलमान। वे मुझे जादू की, भूत–प्रेत की, राजकुमार की कहानियाँ सुनाते। मेरी दादी भी ऐसी ही कहानियाँ सुनातीं। मेरे जो मित्र थे – मारत्या और इल्या – उनकी दुनिया ही अलग थी। वे बड़ा इंद्रजाल पढ़ते। मोहिनी मंत्र की साधना कर लड़कियों को पटाना उनका लक्ष्य था। यह हुआ मेरे आसपास का परिवेश। ... मेरा गाँव – एक छोटा

सा देहात। उन दिनों वहाँ सुधार या विकास की कोई हलचल नहीं थी। जाति – व्यवस्था का कठोरता से पालन हुआ करता था। पक्षपात आम बात थी।' शरण कुमार लिम्बाळे ने विभिन्न संदर्भों में इस यथास्थितिवाद का विवेचन किया है। धर्म की रूढियों के अनेक प्रसंगों का बेहद मार्मिक वर्णन आत्मकथन की वेधकता को और भी प्रखर करता है। दलित लड़कियों को यौनव्यभिचार में इस्तेमाल किया जा सके और उनसे पैदा हुए बच्चों को भी कोई जिम्मेदारी ना उठाना पड़े, यथास्थितिवादी प्रवृत्ति की यह संस्कृति बरकरार रखने की उत्पीड़नवादी, शोषणकारी व्यवस्था का धार्मिक व्यवस्था द्वारा संवर्धन हो रहा था। लेखक को यह सवाल परेशान करता कि 'दलित में ही ये रूढियाँ क्यों भगवान के नाम पर छोड़े गये स्त्री–पुरुष के विवाह नहीं होते। उनका विवाह तो ईश्वर से हो जाता है ना! देवदासी की संतान को 'अक्करमाशी' कहते हैं। उन्हें 'बलूतं' का अधिकार नहीं होता। ईश्वर के नाम पर उन्हें भीख माँगकर जीना पड़ता।' कहना न होगा आचरणविहीन, लेकिन स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य, पूर्वजन्म जैसे अनुष्ठानों से युक्त इस धर्म की आड में सवर्ण वर्चस्ववाद अपने बर्बर रूप में बढ़ता रहा, उसने एक अवैज्ञानिक वैदिक परंपरा को जिंदा रखा। जिसे हिंदू धर्म संस्कृति कहीं जाती है।

15.3 सवर्ण दलित संबंध : अमानवीयता का समाजशास्त्र

'अक्करमाशी' की वैचारिकी का एक प्रमुख मुद्दा है, सवर्ण–दलित संबंधों की अमानवीयता का आख्यान। लेखक को इस अमानवीय व्यवस्था से तीव्र असहमति है, वह तथाकथित ईश्वरीय और सामाजिक व्यवस्था को प्रश्नबिद्ध करता है, 'ईश्वर मनुष्य–मनुष्य में भेद करता है। एक को अमीर, दूसरे को गरीब। एक को सवर्ण और, दूसरे को अछूत। मनुष्य–मनुष्य में द्वेष फैलानेवाला यह कैसा ईश्वर है? सभी ईश्वर के पुत्र हैं ना? फिर हम अस्पृश्य कैसे? हमें गाँव के बाहर खदेडने वाला ईश्वर, धर्म या देश हमें मान्य नहीं है।' 'अक्करमाशी' इस अर्थ में अन्य दलित आत्मकथनों से अलग है कि इसमें सवर्ण–दलित संबंधों की अन्तरयात्रा का आख्यान करते समय अनेक स्थानों पर तथाकथित अवैध संतान (अक्करमाशी) की पीडा का भी मार्मिक वर्णन किया गया। वर्णश्रेष्ठता के दंभ ने यौन शोषण को अपना अधिकार समझकर सदियों से दलित स्त्री को अपमानित किया और इन थोपे गए संबंधों से उत्पन्न संतान को साफतौर पर अस्वीकार कर दिया। लेखक इस अमानवीय समाजशास्त्र पर तल्ख टिप्पणी करते हैं, 'इस काले पत्थर की कोठी से हमारा कहाँ संबंध है? इस पटेल की हम कौन सी संतान हैं? पटेल से जन्म लेकर भी इस कोठी में हमें नहीं रहने दिया जाता? ये खानदानी दीवारें क्यों नहीं स्वीकार करती मुझे? यह कोठी मौन क्यों है? यह गूँगी क्यों हो गयी है? इसकी जीभ कहाँ लापता हो गयी है?' गाँव में सवर्ण और दलित संबंधों में एक तरफ भोग–ही भोग था तो दूसरी तरफ शोषण ही शोषण। सवर्ण परंपरा से शोषक तो दलित परंपरा से शोषित। लेखक की टिप्पणी गौरतलब है, 'मेरा गाँव–एक छोटा सा देहात। उन दिनों वहाँ सुधार या विकास की कोई हलचल नहीं थी। जाति–व्यवस्था का कठोरता से पालन हुआ करता था। पक्षपात आम बात थी। हम अछूत थे, इसे स्वीकार कर हम जी रहे थे। सवर्णों में जो दो–चार हमारी अछूत बस्ती में आते, वे या तो शराब पीने के लिए आते या बस्ती में जो दो–एक परित्यकताएँ थीं, उनके संग मज़ा मारने अथवा मज़दूर इकट्ठे करने आते। गाँव का और हमारी बस्ती का बस इतना ही संबंध था।' इस तरह 'अक्करमाशी' अमानवीयता के क्रूर चेहरे (सवर्ण–दलित संबंध) की असलियत को बेनकाब करती चलती है।

15.4 यातना के पिंजरे से मुक्ति का अहसास : अक्करमाशी

'अक्करमाशी' में तथाकथित अवैध संतान की गहन पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया

है। इस विशिष्टता के कारण रचना का कैनवास और दलित आत्मकथनों से अलग है। अवैध का दंश अछूतों के बीच रचनाकार को अछूत करार देता था। इस आंतरिक अस्पृश्यता का दंश बेहद भयानक था। दर्द के गहरे समंदर में डूबा मन 'हमारे को हरिनाम' पर भरोसा करता। यह अलग बात है कि वहाँ से कोई कृपा नहीं बरसती। लेखक उन दिनों को याद करते हुए कहते हैं, 'मुझ जैसे जो बच्चे थे, वे भी मुझे 'अक्करमाशी' कहकर चिढ़ाते। अक्करमाशी का अर्थ ही था कि तेरा जन्म अनैतिक संबंधों से हुआ है। सवर्ण हो या अवर्ण कि अछूत, सभी के मज़ाक का मैं विषय बन चुका था। वे मुझे अपमानित करते। अछूत भी मुझे अछूत सिद्ध करते। स्कूल के दिनों में मैं बहुत ही धार्मिक और ईश्वर पर प्रगाढ श्रद्धा रखनेवाला था।' अपमान, तिरस्कार और वंचना से पीड़ित शरण को उस समय सुकून मिला जब रचनात्मक अन्विति के रूप में आत्मकथन लेखन का रास्ता उन्होंने अख्तियार किया। आत्मकथन शरण के लिए पिंजरे से उन्मुक्त होने का अहसास था। बकौल लेखक, 'अक्करमाशी' लिखने के पूर्व मैंने करीब–करीब सभी दलित आत्मकथाएँ पढ़ी। मराठी में प्रकाशित अन्य आत्मकथाएँ भी पढ गया। इन सबमें व्यक्त जीवन से मेरा जीवन भिन्न है–इसका विश्वास हुआ। यह भिन्नता ही आत्मकथन लिखने के लिए मुझे प्रवृत्त करती गयी। मैं लिखता गया। केंचुल फेंककर साँप जैसे बाहर आता है, वैसे मैं अक्करमाशी से बाहर आ गया। अब मुझे किसी से भय नहीं। कोई हीन–ग्रंथि नहीं।' कहना न होगा रचनात्मक विस्फोट से यातना के सफर का रूपांतरण विद्रोह और प्रतिबद्धता के स्वर में हुआ।

15.5 दलित आत्मकथन, अक्करमाशी और विरोधी मत

दलित आत्मकथनों के साथ ही 'अक्करमाशी' पर भी विभिन्न आरोप लगाये गये। आवश्यकता इस बात की है कि उन आरोपों पर एक नज़र डाली जाय। शरणकुमार लिंबाले ने विस्तार से द्वितीय संस्करण की भूमिका में उनका उल्लेख किया है। उन्होंने आरोपों की वास्तविकता का भी विश्लेषण किया है। शरण लिखते हैं – 'दलित–आत्मकथन पर सबसे बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि इसके लेखकों ने अपने भोगे हुए दुःखों की पूँजी पर यातनाओं का, दुःखों का बाजार सजाया है।' दरअसल दलित आत्मकथन की प्रमुख मान्यता ही यही है कि साहित्य का मानदंड कल्पना मात्र से प्रेरित न होकर यथार्थ पर आधारित हो। मुख्यधारा की साहित्यिक आलोचना को ऐसा लगना लाजिमी है कि दलित आत्मकथन दुखों का बाज़ार सजाती हैं। पर सच तो यह है कि दलित रचनाएँ छूट गये या उपेक्षित समाज के भोगे गये सच को ज्यों का त्यों कहने का साहस करती हैं और इस तरह नये तरह के सौन्दर्यबोध को साहित्य की दुनिया से रू–ब–रू कराती हैं। ज़ाहिर है यह आरोप तर्कसंगत नहीं है। लेखक कहते हैं कि इस प्रकार के आरोप के मूल में दलित–आत्मकथनों की लोकप्रियता और उनके पुरस्कृत हो जाने की घटनाएँ कारणभूत रही हैं। एक आरोप यह लगाया गया कि, 'दलित आत्मकथन विस्फोटक होते हैं।' ध्यान से देखें तो इसके पीछे अलग–अलग तरह के सौन्दर्यबोध की भूमिका होती है। ऐसा संभव है कि आभिजात्यता के काल्पनिक और मनोरंजन प्रधान साहित्यिक अभिव्यक्ति अच्छी लग सकती है तो उत्पीड़ित समूह को सच को पूरे प्रतिरोधी तेवर के साथ अभिव्यक्त करना अनिचार्य लगता हो। लेखक की मान्यता गौरतलब है, 'वास्तव में यह विस्फोटकता पाठकों की समझ तथा अनुभव के विश्व पर आधारित होती हैं। मराठी ललित साहित्य (लेखक का आशय तथाकथित मुख्यधारा के मराठी साहित्य से है) मुझे विशुद्ध मनोरंजनप्रधान लगता है। ठीक इसी प्रकार औरों को दलित साहित्य अश्लील और सनसनीखेज लग सकता है।' लेखक इतना कहकर अपने पक्ष का तिरोभाव नहीं कर देते व उन परिवेशों का ज़िक्र भी करते हैं, जिनके बीच ऐसी समझ बनती और परवान चढ़ती है। वे कहते हैं, 'हम दलित लेखक जब कभी किसी सभा सम्मेलन हेतु

किसी मध्यवर्गीय सवर्ण संयोजक के घर जाते हैं, तो वहाँ का सजा सँवरा सुविधा से परिपूर्ण वातावरण देख आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार मध्यवर्गीय चौखट के लोग जब झुग्गियों के जीवन को तथा उस जीवन के प्रतिबिम्ब को साहित्य में देखते हैं तो वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं, उसे न समझ पाते हैं और न ग्रहण कर पाते है।' लेखक विस्तार से अन्य आरोपों की चर्चा भी करते हैं।

15.5.1 आरोपों की मुखरता और प्रतिपक्ष का दर्शन

आरोपों की मुखरता 'अक्करमाशी' के विशेष संदर्भ में भी उल्लेखनीय है जिनका लेखक ने विश्लेषण किया है। लेखक आरंभ में ही अपना पक्ष इस प्रकार रखते हैं, 'मैं' 'अक्करमाशी' (अपने आत्मकथन) की ओर एक कलाकृति के रूप में नहीं देखता। यह एक दस्तावेज है। कैफियत है। इस आत्मकथन की ओर सामाजिक अत्याचार के रूप में पाठक देखें, ऐसा मेरा आग्रह रहा है।' लेकिन इस विनम्रता के बावजूद यह कहना तर्कसंगत होगा कि 'अक्करमाशी' की भी एक कलात्मक मुद्रा है, यह अलग बात है कि इस सौन्दर्यबोध का संबंध पारंपरिक सौन्दर्यबोध से अलग है जिसकी मूल चेतना श्रमशील उपेक्षितों के सच और सपने से जुड़ता है। एक आरोप यह लगाया गया कि लेखक ने प्रकाशक को दस हज़ार रुपये देकर आत्मकथन का प्रकाशन कराया। कहना न होगा कि यह आरोप लगाने वाले हीनता ग्रन्थि भी, और 'अक्करमाशी' अपार लोकप्रियता प्राप्त थी। उसी तरह लेखक को सवर्णों द्वारा लगाये गये इस आरोप से भी जुड़ना पड़ा कि पिता के लिंगायत होने के कारण उसे वीरशैव साहित्य का ही सृजन करना चाहिये। कुछ लोगों को 'अक्करमाशी' काल्पनिक लगी। वे कहते कि अब जाति–व्यवस्था की कट्टरता कहाँ रही? कुछ कहते कि 'आप तो अभी बहुत जवान हैं। ऐसी कोई ज़िन्दगी आपने जी होगी, ऐसा मुझे नहीं लगता। 'जाहिर हैं ऐसा इसलिए कहा जाता क्योंकि पारंपरिक आत्मकथाएँ प्रायः प्रौढावस्था में लिखी जाती हैं, जबकि 'अक्करमाशी' का लेखक युवा था। पारिवारिक सदस्यों और मित्रमंडली के बीच इस बात पर नाराज़गी ज़ाहिर की जाती कि अब इन बातों को दुहराने का क्या औचित्य? दलित समाज का एक तबका कहता कि अब दलित साहित्य रचने का क्या प्रयोजन जबकि वे बौद्ध हो गये हैं। पर लेखक ने निर्भयता और प्रतिबद्धता के साथ प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया और अपनी रचनाधर्मिता को सृजनशीलता के नये आयाम से समृद्ध किया। लेखक के अनुसार सोशल सेंसर की अपेक्षा सर्जनशील लेखक के सेंसर का महत्व होता है। जिस प्रकार समाज किसी कलाकृति पूर्ण करते समय किसी प्रसंग को अच्छा या बुरा निश्चित करता जाता है। नीति, परंपरा, कानून, समाज, नाते–रिश्ते, व्यक्तिगत जीवन, अनेकानेक हित संबंध तथा प्रतिष्ठा के दबाव के नीचे लेखक जीता रहता है। आत्मकथन लिखते समय पूर्णतः निर्भय तथा निर्लज्ज हो जाना जरूरी है।'

15.5.2 अक्करमाशी का पक्ष

शरण कुमार लिंबाळे ने विस्तार से अपने उस सच का बयान किया है जिसकी भित्ति पर 'अक्करमाशी' का सर्जनात्मक सफर तय हुआ। अस्तित्व पर ही सवाल उठाने वाले तथाकथित सफेदपोश लोगों पर लेखक की टिप्पणी बेहद तल्ख और सही है–'गाँव, भाषा, माँ, पिता, जाति, धर्म–इस सभी दृष्टियों से मैं खंडित हूँ। गुमशुदा व्यक्तित्व लिए जीने वाला मेरे अस्तित्व को 'जारज' कहकर सतत अपमानित किया गया है। ब्राह्मणों से लेकर शुद्रों तक सभी अपने खानदानी अभियान और खानदानी अस्मिता लिए जीते हैं; परंतु यहाँ मेरी अस्मिता पर ही बलात्कार हुआ है। बलात्कारित स्त्री की तरह मेरा यह जीवन। यहाँ की नीति ने मेरे साथ एक अपराधी की तरह ही आचरण किया है मेरे जन्म को ही यहाँ अनैतिक घोषित किया गया है।' किसी भी अत्याचारी व्यवस्था का महिलाएँ और बच्चे आसान शिकार बनते हैं। दिल दहला देने वाली एक सचाई यह भी है कि व्यवस्था अत्याचार के बाद शिकार को ही दोषी ठहरा देने का वीभत्स खेल खेलती है। पर

संवेदनशील लेखक इसका प्रतिकार करते हुए बलात्कृत माँ को व्यभिचारी करार देने वाली व्यवस्था से सतत लड़ता रहता है; 'यह माँ का व्यभिचार नहीं है, अपितु वह प्रस्थापित समाज–व्यवस्था की शिकार है–इस बात का एहसास मुझे दलित साहित्य तथा दलित आंदोलन ने दिया।' ध्यान दें तो हम पायेंगे कि वह संवेदनशीलता एक वैचारिक प्रतिबद्धता का आकार ग्रहण करती नज़र आएगी। लेखक को यह दौर व्यवस्था परिवर्तन का नज़र आता है, उसका यह आत्मविश्वास उल्लेखनीय है, 'अगले दशकों में बहिष्कृत समाज के अनेक आत्मकथन समाज में आएँगे। और इस कारण भारतीय साहित्य का चेहरा–मोहरा ही बदल जाएगा।'

15.6 प्रतिशोध का दर्शन और विद्रोह

'अक्करमाशी' की रचना–प्रक्रिया का एक प्रमुख सरोकार है– सवर्ण आधिपत्य के अस्वीकार की मुखरता। उसी से निर्मित होता है प्रतिशोध का दर्शन और प्रतिशोध के इस दर्शन की स्वाभाविक परिणति है – विद्रोह। 'अक्करमाशी' में इस चेतना के अनेक रूप हैं, जिनसे न सिर्फ जन सरोकार का पता चलता है, बल्कि नये तरह की सौन्दर्य दृष्टि के सृजन की आकुलता भी नज़र आती है। किशोरावस्था में जब सवर्ण शोभी द्वारा अछूत किशोर शरण और परश्या के बार–बार अपमानित करना बेहद नागवार लगता है ऐसे में प्रतिशोध की आग में तपते शरण और परश्या द्वारा शोभी का रास्ता रोकना एकदम स्वाभावित लगता है। लेखक लिखते हैं, ''अचानक परश्या ने शोभी का हाथ पकड़ा। मैं परेशान। पर मन में प्रतिशोध की भावना थी, 'हम अछूत हैं। हमारे स्पर्श से पानी अपवित्र हो जाता है ना, जो फिर नदी क्यों नहीं अपवित्र होती? हमारे स्पर्श से अगर आदमी अपवित्र हो जाता है, तो क्यों नहीं हुई तू पीली काली? क्यों नहीं तेरे सिर पर की रोटियाँ सड़ गयीं? हमें अछूत कहती हो तो दो इन प्रश्नों के उत्तर?''

उसी तरह सार्वजनित होटल में अछूतों के लिए चाय के बर्तन अलग रखने पर युवा दलितों को बेहद अपमाजनक लगता। गाँव में दलितों की युवा पीढ़ी में जिस नयी समझ का तेजी से विकास हो रहा था, वह था स्वाभिमान। बकौल लेखक, 'हम गाँव में स्वाभिमान से घुमते। इस कारण गाँव के सवर्ण युवक खार खाते। उन्हें नहीं चाहिए था हमारा स्वाभिमान। स्वाभिमान में एक अलौकिक ताकत होती है इसका एहसास मुझे हो रहा था। हम थोपी गयी शूद्रता में जलकर राख नहीं होना चाहते थे। छटपटाते थे। शिवराम के होटल के बाहर रखा गया कप सॉसर हमें हमारी जाति का अपमान लगता। पुरानी पीढ़ी उस अपमानित कप–सॉसर में चुपचाप चाय पीती।' लेखक और परश्या इस सिलसिले में थाने पहुँचे। पुलित के हवलदार ने पहले दबाव बनाने की कोशिश की पर लेखक ने जब यह कहा कि वे लोग मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री को पत्र लिख रहे हैं तब माजरा बदला और होटल मालिक शिवराम को चिढ़ के साथ ही सही झुकना पड़ा।

प्रतिशोध के इस दर्शन का एक मुख्य प्रेरणास्रोत थीं– संतामाय। लेखक उन दिनों को याद करता हैं, 'संतामाय मुझे अन्याय की कहानियां सुनातीं। उनकी आंखों से टपकनेवाले आँसू मुझे महाकाव्य की तरह लगती। उनकी एक–एक कहानी मुझे महाकाव्य की तरह लगते। उनकी एक–एक कहानी महायुद्ध की चिनगारी का एहसास दिलाती। जिस भूतकाल को हम जी चुके हैं, वह कितना भयावह है, इसका एहसास मुझे होने लगा। मेरी व्यथा मुझ तक सीमित नहीं है। वह व्यथा आज की नहीं है। इस अन्याय की जड़ें हजारों वर्षों के इतिहास में धँसी हुई है। मेरा दुःख बुद्ध द्वारा देखा गया दुःख है।' कहना न होगा 'अक्करमाशी' की यात्रा बदलते समाज में अतीत से अनुकूलन के बरअक्स प्रतिशोध के दर्शन की इबारत संभव करती है।

15.7 विचार की चौहद्दी में आरक्षण का सवाल

आज़ादी के बाद संविधान निर्माताओं की सजग दृष्टि ने उपेक्षित समाज के न्यायोचित अधिकार प्राप्ति के लिए आरक्षण का प्रावधान रखा, जिसका सवर्ण समाज ने आक्रामक विरोध किया। 'अक्करमाशी' की संरचना इस सवाल से भी रू–ब–रू होती है। आरक्षण का विरोध करने वालों से लेखक बहस की मुद्रा में सवाल पूछता है, 'आरक्षण रद्द करना है तो फिर हमें 'दलित स्थान' मिल जाना चाहिए। इस उम्र में जानवरों की रखवाली करना और माँ–पिता की जिम्मेदारियाँ में हाथ बँटाना ज़रूरी होता है। पर मैं उस समय कॉलेज में पढ़ रहा था। माँ–पिता रात दिन मेहनत–मज़दूरी कर रहे थे। किताब के प्रत्येक पन्ने पर उनके श्रम, भूख और आशा को मैं देखता।'

आरक्षण के बाद जब स्थितियाँ तेज़ी से बदलीं तब अन्य तरह का दलित उत्पीड़न सामने आया, 'दलितों को मिलनेवाली सुविधाएँ, शिक्षा के कारण उनमें उभरती अस्मिता व स्वाभिमान और इस नयी अस्मिता से जीने वाला दलित–समाज, आंदोलनों के कारण उभरने वाला विद्रोही युवक, नौकरियों के कारण सुखी जीवन जीनेवाला अछूत, धर्मांतर के कारण थोपे गये कामों के प्रति उसकी अरुचि–इन विविध कारणों से सवर्ण हिन्दू चिढ़ गये थे। हज़ारों वर्षों से कुत्ते–बिल्लियों की तरह उनके पैरों के निकट गुलाम बनकर जीनेवाला यह समाज उनकी बराबरी करने की कोशिश करने के लिए वे कतई तैयार नहीं थे।' 'अक्करमाशी' की रचना–प्रक्रिया में शामिल यह सवाल उसकी प्रासंगिकता को नये आयाम से समृद्ध करता है।

15.8 दलित संघर्ष की परिणति और बदलाव के स्फुलिंग

आत्मकथा के उत्तरार्द्ध में उन अनके विवरणों को संयोजित किया गया है, जिनसे दलित संघर्ष की परिणति और बदलाव के स्फुलिंगों का पता चलता है। रचना शुरू से अंत तक अमानवीय तंत्र में मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष करती है। वर्ण–व्यवस्था की दुरभिसंधियों के साथ यदि तथाकथित जारज या अवैध संतान का भी दारूण दुख जुड़ जाए तब यह संघर्ष बेहद कठिन हो जाता है, जिसके साक्ष्य 'अक्करमाशी' में अत्यंत संवेदनशील रूप में मौजूद है। शिक्षा, संघर्ष और उपलब्धि के रूपों की चर्चा आत्मकथा में मौजूद है। कुछ साक्ष्य देखे जा सकते हैं :–

- 'माने–मेरा मित्र। देहात का भयावह दरिद्रता से संघर्ष करते हुए यहाँ तक पहुँचा है। अब वह किसी बैंक में नौकरी कर रहा है। उसके अचार–विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है।'

- सबैरे मैं बार्शी निकला। निकलते समय नज़र अचानक लॉज पर गयी। एक नया विश्व दर्शन हो रहा था। चंद्या और उसकी पत्नी लॉज में थे। ..... अब नौकरी, सुशिक्षित पत्नी है। अब वह मध्यवर्गीय हो चुका है।

- 'कुसुम के लड़का हुआ है। लड़के का नाम 'अनार्य' रखने का निश्चय मैं पहले ही कर चुका था।'

कहना न होगा आत्मकथा में मौजूद बदलाव के स्फुलिंग हमें आश्वस्त करते हैं कि उसमानवीय व्यवस्था की ज़रूरत तब तक बनी रहेगी, जब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी प्रतिभा से तय होगा न कि उसकी जाति से या फिर तथाकथित अवैध जन्म के अतीतसे।

15.9 सारांश

'अक्करमाशी' पर आधारित इस इकाई में आपने रचना के कलात्मक और वैचारिक सरोकारों को बखूबी समझा। अक्सर दलित आत्मकथनों पर एकमात्र उत्पीड़न के चित्रण की एकरसता का आरोप लगाया जाता है। 'अक्करमाशी' के आयामों की विविधता, जैसे—वर्णश्रेष्ठ का यौन व्यभिचार, सांप्रदायिक संकीर्णता, प्रतिरोध की चेतना दलित समाज में मौजूद आंतरिक जातिगत उत्पीड़न इत्यादि उसे श्रेष्ठ कृति के रूप में रूपांतरित करती है। साथ ही 'अक्करमाशी' की कलात्मकता, दलित आत्मकथन के सौन्दर्यशास्त्र जैसे पहलुओं से भी आप रू—ब—रू हुए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 16 जीवन हमारा-I

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 बेबीताई कांबळे का जीवन परिचय

16.3 'जीवन हमारा' की केन्द्रीय विषय वस्तु

16.4 दलित मुक्ति आंदोलन से विकसित चेतना

16.5 चरित्र चित्रण

16.5.1 पंढरीनाथ मिस्त्री

16.5.2 नाना

16.5.3 नानी

16.6 सारांश

16.0 उद्देश्य

दलित स्त्री आत्मकथन लेखन की सबसे प्रथम अभिव्यक्ति का श्रेय बेबीताई कांबळे के 'जीवन हमारा' आत्मकथन को दिया जाता है। मराठी साहित्य क्षेत्र में इसके प्रकाशन से स्त्री विमर्श पर गंभीर चर्चा आरंभ हुई थी। दलित आत्मकथनों में उभरे दलित स्वर से यह आत्मकथन बहुत मायने में विशिष्ट है। स्त्री जीवन के अछूते जीवन संदर्भों, दलित समुदाय की भीषण वास्तविकताओं और जीने की जीवटता के दिल दहलाने वाले अनुभवों का विस्तार पूर्वक चित्रण किया गया है। इस इकाई के पहले आप शरण कुमार लिंबाळे के 'आक्करमाशी' आत्मकथन का दो इकाइयों में विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं। दलित शोषण की, दास्यत्व की जिस अमानवीय परंपरा का निर्माण और संवर्धन जाति व्यवस्था, सामंतप्रथा ने अपने स्वार्थ के लिए करके दलित स्त्री के जीवन को नरकतुल्य बना दिया गया है की भीषण वास्तविकता को इन इकाइयों के अध्ययन से जान चुके हैं। पिता के जीवित होते हुए भी दलित स्त्री को पत्नी का दर्जा दिए बिना बनाए गए शारीरिक संबंधों के कारण पैदा हुई संताने अवैध अर्थात 'अक्करमाशी' के रूप में पहचानी जाती रही। यह संताने जीवन भर अपनी खोई हुई पहचान के लिए संघर्ष करती रहती हैं। ऐसी जघन्य क्रूर अमानवीय प्रथाओं के आज तक यथावत् बने रहने के पीछे के धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक शोषण परंपराओं की सच्चाई को दलित आत्मकथन उजागर करते हैं। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक संरचनागत विषमता के पोषक दैवीय धार्मिक ग्रंथों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए शोषण–दमन–उत्पीड़न की अघोरी प्रथा–परंपरा की निर्मिति और जतन के पीछे की सोच का पर्दाफाश करते हैं। प्रस्तुत इकाई बेबीताई कांबळे की 'जीवन हमारा' आत्मकथन के माध्यम से स्त्री के बहुआयामी शोषण, पितृसत्ता के वर्चस्ववाद को झेलती स्त्री के दमन–उत्पीड़न तथा आर्थिक निर्भरता के कारणों की गंभीरता से पड़ताल करती हैं। यहाँ अनुभवों का फलक व्यक्ति तक सीमित नहीं है बल्कि संपूर्ण समुदाय के अनुभवों को अभिव्यक्ति देकर वेदना के एक अनोखे संसार के त्रासद पहलुओं से हमें अवगत कराता है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत

आप–

- दलित आत्मकथन व्यष्टिगत नहीं बल्कि समष्टिगत अनुभवों की अभिव्यक्ति के प्रामाणिक दस्तावेज हैं इससे अवगत हो सकेंगे;
- दलित जीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं उजागर होने से शोषण परंपरा की सच्चाई से आप अवगत हो सकेंगे;
- दलित स्त्री लेखन में अभिव्यक्त स्त्री जीवन की भीषण वास्तविकता से परीचित हो सकेंगे;
- दलित स्त्री जीवन में व्याप्त विवंचना, गरीबी, भूख, वेदना और बेचारगी की सच्चाई का विवेचन कर सकेंगे;
- 'जीवन हमारा' में चित्रित दलित स्त्री के बहुआयामी शोषण के कारणों की पड़ताल कर सकेंग;
- दलित मुक्ति आंदोलन से दलित समुदाय में जगी चेतना के विकास को रेखांकित कर सकेंगे; और
- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जाति उन्मूलन के प्रयास और दलितों में अस्मिताबोध जगाने की भूमिका को समझ सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

भारत की जाति आधारित संरचना ने जिस सोपानिक व्यवस्था का निर्माण किया वह निरंतर शोषण की परंपरा को विकसित करती रही। इस व्यवस्था में स्त्री की स्थिति अतीशय शोचनीय रही क्योंकि जैसे जैसे सभ्यता और संस्कृति को पितृसत्ता ने अपने हित में और वर्चस्व में ले लिया स्त्री का स्थान समाज में दोयम दर्जे का होता गया। इस वर्चस्ववाद को एक विचारधारा संस्कार संस्कृति का रूप देने के लिए पुरुष सत्ता ने धर्म ईश्वर ग्रंथ और भाग्यवाद का सहारा लिया। स्त्री–पुरुष ऊँच–निम्न भेदभाव को ईश्वर निर्मित बताकर पुरुषसत्ता ने दैवीय दासता की संस्कृति का विकास किया गया। शूद्र–अतिशूद्र और स्त्री अपनी स्थिति के प्रति सजग होकर कभी विद्रोह न कर बैठे इसलिए मनु द्वारा मनुस्मृति की निर्मिति की गई जो शूद्र–अतीशूद्र और स्त्री की धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ताओं में भागीदारी से वंचित करती है जिसे हिंदू धर्म के विधि–विधान का रूप दिया गया। इसमें निर्देशीत नियमावली के उल्लंघन के लिए प्राणांतिक सजाओं का निर्धारण करके इसे अपरिवर्तनीय बना दिया गया। आश्चर्य नहीं कि शूद्रों और स्त्रियों को धर्मग्रंथ पढ़ने की कठोर मनाही थी। शूद्र द्वारा धर्मग्रंथों के पाठ को सूनने या उसके उच्चारण करने पर कान में पिघलता सिसा डाला जाता और कंठ में दस अंगूल लंबी तप्त लोहे की छड़ डाल दी जाती। यह मरण यातना केवल धर्मग्रंथों में लिखे मिथ्या विषमतावादी क्रूर नियमों के लिखने मात्र से व्यवहार का हिस्सा बना था। इन ग्रंथों को सूनकर अथवा पढ़कर हाशिए का समूह कहीं विद्रोह न कर बैठे और गुलामी की श्रृंखलाओं को तोड़कर मुक्ति के लिए संघर्ष न करें इसके लिए अतीशय क्रूर सजाओं के निर्धारण तथा दलित और स्त्री को धर्म के भय द्वारा शिक्षा से वंचित कर दिया गया। सदियों से मूक रहे दलित समुदाय को अपने अस्तीत्व के अहसास होने के लिए महात्मा ज्योतिबा फूले और सावित्रीबाई फूले द्वारा छेड़े गए सत्यशोधक

आंदोलन के उभरने तक इंतजार करना पड़ा। महात्मा फूले ने शूद्र होने के दर्द अपमान को स्वयं झेला था। वे शिक्षित होने के बावजूद पुना के ब्राह्मणों द्वारा अनेकों बार अपमानीत किए गए। पुना शहर जहाँ कभी ब्राह्मण पेशवाओं ने शासन किया था और जो कि ब्राह्मणवादी भेदभाव का गढ़ बन चुका था। अपने श्रेष्ठत्व और वर्चस्व की धाक जमाने के लिए पेशवाओं ने ही सर्वप्रथम अछूतों को गले में मिट्टी की हांडी, पीठ पीछे झाड़ू बांधने के नियम लागू करने वाला शाही फर्मान निकाला था। अछूतों को हर सुबह शहर की गलियों की सफाई, नालीयाँ साफ करना जैसे मलीन काम करने की सख्ती की गई थी। उनकी परछाई ब्राह्मणों पर पड़ने से वे अपवित्र न हो इसका ध्यान रखने के लिए अछूतों को सारे काम बहुत सुबह करने होते। वे रास्ते पर थूकें नहीं इसके लिए गले में हांडी पहना दी थी, पदचिन्हों पर ब्राह्मणों के पैर पड़ने से वे अपवित्र न हो जाए इसलिए कमर में झाड़ू लटकाकर और पदचिन्ह मिटाते चलने का सरकारी फर्मान था। ऐसे ब्राह्मणवाद के गढ़ में सबसे पहले ब्राह्मणवाद के विरोध में सत्यशोधक समाज की स्थापना द्वारा ब्राह्मणवाद के कट्टरवाद से बहुजन समाज को अवगत कराया। ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को चुनौती देने वाले कार्यक्रम चलाकर शूद्र–अतिशूद्र और स्त्रियों में जागरूकता पैदा की। इसी कार्यक्रम का एक क्रांतिकारी कदम था शूद्र और कन्याओं के लिए पाठशालाएं खोलना। कन्याओं को पढ़ाने के लिए उनकी पत्नी सावित्रीबाई फूले स्वयं शिक्षित होकर कन्या पाठशाला में पढ़ाने वाली भारत की पहली शिक्षिका बनी। उनकी पाठशाला में दलित और अन्य वर्ग की कन्याएं शिक्षा ग्रहण कर चुकी। उन्हीं में से एक अछूत कन्या मुक्ता साळवें ने 'महारों और मातंगों का दुःख' शीर्षक से एक निबंध लिखा था, जो 1855 में 'ज्ञानोदय' में छपा था। स्त्री लेखन की यह परंपरा सावित्रीबाई फुले की विरासत को आगे बढ़ाती हैं। महात्मा फूले के इस आंदोलन का अगला पड़ाव डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में दलित मुक्ति आंदोलन द्वारा मानव अधिकारों को प्राप्त करने का क्रांति का संघर्ष रहा। मुक्ति के लिए शुरू हुए इस संगर के प्रत्येक कार्यक्रम में दलित महिलाओं ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। महाड़ का चवदार तालाब, नासिक के कालाराम मंदीर सत्याग्रह, महाड़ में मनुस्मृति को जलाने का सार्वजनिक कार्यक्रम आदि मुक्ति संघर्ष के सभी आंदोलनों में दलित महिलाओं की बढ़चढ़कर भागीदारी रहीं। डॉ. आंबेडकर दलित महिलाओं की बड़ी संख्या में उपस्थिति को देखकर समझ गए थे कि समाज में जिनके अस्तीत्व अस्मिता सम्मान को नकारा है, उनके भीतर मुक्ति की अदम्य ईच्छाशक्ति है। प्रत्येक सभा के दूसरे दिन डॉ. आंबेडकर दलित महिलाओं की स्वतंत्र सभा का आयोजन करते। उन्हें संबोधित करते समय उनके भीतर की मुक्ति की आकांक्षा को देखते हुए उनके अंदर अस्तीत्व बोध जगाने का प्रयास करते। अपने सुनियोजित कार्यक्रमों द्वारा दलित स्त्री शक्ति को निश्चित दिशा की ओर मोड़ने का उनका यह प्रयास निरंतर रहा। महिला सभाओं के आयोजन, मंच संचालन तथा अध्यक्ष पद तथा कार्यकारिणी बनाने की जिम्मेदारी उन्होंने महिलाओं को सौंप दी। दलित महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ता गया। 1942 में 'अखिल भारतीय शेड्युल्ड कास्ट महिला फेडरेशन' की स्थापना की थी जिसकी प्रथम अध्यक्ष सुलोचनाबाई डोंगरे थी। इस फेडरेशन के नागपुर अधिवेशन में पच्चीस हजार दलित महिलाएं शामिल हुई थी। डॉ. आंबेडकर केवल एक वक्ता के रूप में उपस्थित रहें।

मुक्ता सर्वगौड़ के आत्मकथन 'बंद थे दरवाजे' (मिटलेली कवाडे) में डॉ. आंबेडकर द्वारा दलित महिलाओं की सभाओं में किए गए अभिभाषण को यहाँ पर आपकी जानकारी के लिए उद्धृत है, 'भगवान की पूजा–अर्चना में जिस तरह औरतें सबसे आगे रहती हैं उसी तरह बच्चों को शिक्षित करने के लिए भी औरतों को ही आगे आना होगा। औरतें ही अपने बच्चों को सुशिक्षित करने की जिम्मेदारी ले। अज्ञानता की पूजा आज से ही खत्म करो।

मेरी बहनों और माताओं, इस सुधार की दिशा में पहला कदम तुम्हारा ही होना चाहिए।' (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 18)

इसी प्रकार कौसल्या बैसंत्री के 'दोहरा अभिशाप' में उनकी अनपढ़ मजदूर माँ पर डॉ. आंबेडकर के भाषण के पड़े प्रभाव स्वरूप उन्होंने अपने सभी बच्चों को अंतहीन गरीबी के बावजूद पढ़ाने–लिखाने का प्रण लिया और जिसे बड़ी कठिनाइयों को झेलते हुए पूरा किया। कौसल्या बैसंत्री ने माँ के अथक परिश्रमी और दृढ़ निश्चयी व्यक्तित्व के बारे में लिखा है, "माँ–बाबा को सभी की पढ़ाई का खर्चा उठाने में बहुत दिक्कत पड़ती थी, फिर भी उन्होंने हमें पढ़ाना जारी रखा। उन्होंने डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के नागपुर में कस्तूरचंद पार्क में दिए भाषण को सुना था, "अपनी प्रगति करना है तो शिक्षा प्राप्त करना बहुत जरूरी है। लड़का और लड़की दोनों को पढ़ाना चाहिए" माँ के मन पर इसका गहरा असर पड़ा था और उन्होंने हम सब बच्चों को पढ़ाने का निश्चय किया था, चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना करना पड़े।" (वहीं, पृ. 18)

दलित स्त्री की सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन में भागीदारी उस समय की स्थिति में अतीशय प्रशंसनीय प्रयास कहा जाना चाहिए। दलित माताओं ने भूख और गरीबी से जूझते हुए अपने बच्चों को शिक्षित करने का दायित्व लिया। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में मिले आरक्षण और शिष्यवृत्ति से लड़कियों का शिक्षा ग्रहण करने की ओर आकर्षण बढ़ा। दलित लेखकों की एक पीढ़ी ही दलित लेखन में शिघ्रता से जुट गई। लेखिकाओं की संख्या इनमें भले ही कम रही लेकिन स्त्री के तिहरे शोषण को अभिव्यक्ति देने में वे सफल रही। मराठी तथा अन्य भाषाओं में अभी तक के आत्मकथनों में प्रमुख रूप से शांताबाई कांबळे की 'माइया जल्माची चित्तरकथा' बेबीताई कांबळे की 'जिणं अमुचं' (जीवन हमारा) कुमुद पावडे की 'अंतःस्फोट', शांताबाई दाणी की 'रात्रं दिन आम्हा', जनाबाई गिऱ्हे का 'मरणकळा' (मरणपीड़ा) मुक्ता सर्वगौड का 'मिटलेली कवाडे' (बंद थे दरवाजे) उर्मिला पवार का 'आयदान' कौशल्या बैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे का 'शिकंजे का दर्द', बामा का 'करक्कू' प्रकाशित हुए हैं। दलित लेखिकाओं के आत्मकथन वर्चस्वीता की परंपरा के विरोध में उठाया गया एक सशक्त क्रांतिकारी कदम है। सदियों तक शिक्षा से वंचित रखे गए स्त्रीवर्ग द्वारा धर्म, ईश्वर, ग्रंथ और राजनीतिक सत्ता को चुनौती देता प्रखर स्त्रीवादी स्वर है। प्रस्तुत इकाई बेबीताई कांबळे के 'जीवन हमारा' आत्मकथन पर केन्द्रीत है। इस इकाई में हम बेबीताई का परिचय और 'जीवन हमारा' की विषय वस्तु, इसके प्रमुख पात्र और उनकी विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

16.2 बेबीताई कांबळे का जीवन परिचय

मराठी दलित साहित्य और आंबेडकरवादी आंदोलन में बेबीताई कांबळे का विशेष योगदान रहा है। महाराष्ट्र के फलटण तहसील के निंबोरे गाँव में जन्मी बेबीताई कांबळे की जन्मतिथि के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह एक घरेलू एवं अल्पशिक्षित स्त्री थी लेकिन उन्होंने डॉ. आंबेडकर के आंदोलन में सक्रीय होकर दलित समाज एवं स्त्री के शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के लिए कार्य किया। उनका व्यक्तित्व एक सामाजिक कार्यकर्त्ता का रहा है। उन्होंने किसी कार्यक्रम के बहाने अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उससे उनके संघर्षशील व्यक्तित्व की पहचान होती है। वह आंबेडकरवादी आंदोलन की एक निष्ठावान और प्रामाणिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करती रही है। उन्होंने समाज के अत्यंत गरीब तबकों की सेवा की। उन्होंने महाराष्ट्र राज्य शासन के समाज कल्याण

विभाग की सहायता से घुमंतू जनजातियों के बच्चों के लिए निंबोरे गाँव (तहसील फलटन) में एक स्कूल स्थापित किया और लगातार 20 वर्ष तक अपना योगदान दिया। बेबीताई कांबळे को महाराष्ट्र राज्य शासन की ओर से 'दलित मित्र' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। सामाजिक जागृति और सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्षरत बेबीताई कांबळे की मृत्यु दिनांक 12 अप्रैल 2012 में हुई।

मराठी में बेबीताई कांबळे द्वारा 'जिणं आमचं' शीर्षक से प्रकाशित चर्चित आत्मकथन है। जिसका हिन्दी अनुवाद 'जीवन हमारा' इस शीर्षक से प्रकाशित है। इस आत्मकथा को कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं तथा कई भाषाओं में उसका अनुवाद भी हुआ है। आत्मकथा के अलावा उन्होंने डॉ. आंबेडकर के जीवन पर कई गीतों की रचना की है, जिसका संकलन 'भीमगीते' शीर्षक से प्रकाशित है।

'जीवन हमारा' इस आत्मकथन में डॉ. आंबेडकर के सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन की कई छवियाँ दृष्टिगोचर होती है। इस आत्मकथन में दलित जीवन के संघर्ष, शोषण, उत्पीड़न और सामाजिक–सांस्कृतिक आयामों को उजागर किया गया है। भारतीय समाज में दलित स्त्री के प्रति समाज का जो नजरिया रहा है, उसे लेखिका ने 'जीवन हमारा' में चित्रित किया है। साथ–ही भारतीय समाज की जड़ता और जातिभेद के खिलाफ चलाये गए दलित आंदोलन में दलित स्त्री की भूमिका और योगदान को बेबीताई कांबळे ने रेखांकित किया है।

16.3 'जीवन हमारा' की केन्द्रीय विषय वस्तु

'जीवन हमारा' मराठी के आत्मकथनों में दलित लेखिका बेबीताई कांबळे की महत्वपूर्ण रचना है। अस्तीत्वबोध से जगी दलित चेतना ने विगत जीवन में अस्पृश्यता, गरीबी, गुलामी, यातना, उत्पीड़न के दर्दनाक अनुभवों का विषद चित्रण किया है। बेबीताई कांबळे प्रथम दलित लेखिका है जिन्होंने दलित स्त्री जीवन में व्याप्त तिहरे शोषण को बहुत ही सजगता से रेखांकित करके दलित स्त्री जीवन की भीषण वास्तविकता को अभिव्यक्ति दी हैं। दलित स्त्री जीवन संबंधी आत्मकथन अन्य लेखकों के आत्मकथनों से इसलिए अलग और विशेष है कि इसमें गरीबी की भयावहता, भूख की असीमता, अपमानीत होने के दंश, बलात्कारित होने की विभिषिका के मर्मांतक दर्द को झेलने की स्त्री विवशता के अनछुएं पहलुओं को बड़ा फलक दिया है। डॉ. मैनेजर पांडेय का यह मत विचारणीय है, 'जीवन हमारा' में महाराष्ट्र के एक गाँव की महार जाति के दलित समुदाय के जीवन की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं तथा अनुभवों का अत्यंत जीवन्त चित्रण है, जिससे उस समुदाय की गरीबी, गुलामी और यातना की दिल दहलाने वाली तस्वीरें सामने आती है।' (जीवन हमारा, प्रस्तावना, पृ. 7)

दलित स्त्री आत्मकथनों की केन्द्रीय विषयवस्तु में आप देखेंगे कि दलित लेखिकाओं ने उनके बचपन से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक के जीवन संघर्ष को रेखांकित किया है। विशेष रूप से सभी रचनाकारों ने पाठशालाओं में शिक्षक, हेडमास्टर, सहपाठियों द्वारा लगातार किए जाने वाले तिरस्कार, भेदभाव, छुआछूत के व्यवहार और अपमानीत करने के अनेकों प्रसंगों का तल्ख शब्दों में वर्णन किया है। कौसल्या बैसंत्री, कुमुद पावड़े, शांताबाई कांबळे, जनाबाई गिर्‌हे, उर्मिला पवार, शांताबाई दाणी ने अपने आत्मकथनों में माँ के परिश्रम और बच्चों को पढ़ाकर शिक्षित करने की प्रखर आकांक्षाओं को रेखांकित किया है। अपने बच्चे

पढ़ लिखकर अच्छी नौकरीयाँ हासिल करे तथा परिवार को गरीबी, भूख, आर्थिक वंचना से मुक्ति मिले यह हर माँ का सपना बन चुका था।'

बेबीताई कांबळे सातारा जिले के फलटन तहसील में पली बढ़ी और वहीं की पाठशाला में शिक्षा हासिल की। पिता पंढरीनाथ मिस्त्री ठेकेदार थे और अंग्रेजों के शासनकाल में पूना और फलटण में सरकारी कामों के ठेके लेकर अपना जीविकोपार्जन करते थे। महार जाति के सभी लोग मजदूर के रूप में उनके साथ इस ठेके के काम में शामिल होकर अपना रोजगार कमाते थे। एक ठेकेदार और मजदूरों के बीच में संबंध एक परिवार के सदस्यों जैसे थे। काम न मिलने की स्थिति में पंढरीनाथ ठेकेदार अपने पैसों से सभी को खाना खिलाकर उन्हें भूखमरी के अभिशाप से बचा लेता। इसलिए बेबीताई लिखती है कि 'मेरे पिता पंढरीनाथ ठेकेदार अर्थात् कर्ण का अवतार। मेरे पिता दयालु थे। धन–संपत्ति का संग्रह करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। उनकी कोशिश हरदम इतनी ही रहती थी कि हर इंसान सुखी रहे।'

ठेकेदारी का पैसा आने पर अच्छा खान–पान और अच्छे कपड़े पहनने के शौकीन पंढरीनाथ में भविष्य की चिंता किए बिना सभी धन खर्च डालने की आदतें शामिल थी। धन–दौलत से अधिक अच्छे संस्कार देने पर विश्वास करने वाले ठेकेदार पंढरीनाथ पत्नी के झगड़ा करने और यह कहने पर कि इतना पैसा कमाने पर भी गांव में एक रहने लायक घर भी न बनाया' तो जवाब में कहते जैसे माँ–बाप द्वारा संचित धन बच्चों को स्वतः मिलता है, उसी तरह माँ–बाप द्वारा किए अच्छे–बुरे कामों का फल भी बच्चों को मिलता है। मेरे बच्चों को बहुत सुख मिलेगा। मैंने इस दुनिया में जो अच्छे काम किए हैं, उनका पुण्य–फल मेरे बच्चों को खुद–ब–खुद मिलेगा। इस व्यवहार शून्य प्रवृत्ति के कारण पति–पत्नी में झगड़े होते और उनके बीच हमेशा विवाद रहता रहा। दरिद्र अवस्था से उबकर उसकी पत्नी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था।

जीवन हमारा की विशेषता है कि इसमें व्यक्तिगत जीवन संदर्भ और संघर्ष का चित्रण अत्यल्प है बल्कि दलित वर्ग उसके संपूर्ण अच्छाइयों, बुराइयों के साथ चित्रित हुआ है। आत्मकथन की रचना के लगभग पचास वर्ष पूर्व के समय के दलित जीवन में व्याप्त अंतहीन गरीबी, गुलामी के घेरे में घिरे दलित समुदाय की पीड़ा, उत्पीड़न के अमानवीय रूप, भूख मिटाने के लिए मरे हुए जानवरों का माँस खाने की विवशता, चिथड़ों में लिपटे बच्चे, स्त्रियाँ, बूढ़े, घर के रूप में तीन बांस पर फूस की छत के नीचे रहने की बाध्यता, अस्पृश्यता के चलते गांव की सीमा से दूर कुड़े के ढेर पर बहिष्कृतों का जीवन जीने की विवशता का चित्रण प्रमुखता से किया गया है। बेबीताई ने अपने बचपन में करीब से देखे दलित समुदाय में दलित औरतों के दोहरे शोषण, यातना और पुरुष सत्ता के दबाव और उत्पीड़न को झेलने की विवशता का मार्मिक विशद चित्रण किया है। 'गुलामी की इस सर्वग्रासी प्रक्रिया के विकराल रूप और उसके चंगुल में फँसे दलित समुदाय, विशेष रूप से दलित स्त्री, की लाचारी तथा पीड़ा की जैसी अभिव्यक्ति इस रचना में बेबी कांबळे ने की है वैसी कोई गैर दलित तो क्या दलित पुरुष भी नहीं कर सकता।' (वहीं, पृ. 8)

दलित स्त्री के जीवन में पितृसत्ता का वर्चस्व वैसा ही था जैसा अन्य समुदायों के स्त्री जीवन में था। लेकिन दलित स्त्री उत्पीड़न का एक पक्ष और सामने आता है और वह है सवर्ण पुरुषसत्ता के आतंक और उत्पीड़न को सहना बाल बच्चों के पालन पोषण और जीवनयापन के लिए पुरुषों के बराबर श्रम करने वाली दलित स्त्री को सवर्ण पुरुषों के

जाति अहंकार के कारण अपमानीत होने, दीनहीन होकर वह किस प्रकार अपना बचाव करती हैं के तमाम प्रसंगों का जिवंत चित्रण बेबीताई ने किया है।

दलित समाज में अल्पवय में किशोरियों की शादी करने की परंपरा सदैव रही हैं। उस छोटी सी उम्र में ससुराल में तमाम श्रम के काम करने पर भी भरपेट अन्न नसीब न होने, सास द्वारा सताए जाने के और ससुराल के अन्य पुरुषों द्वारा मारपीट करने पर भी समाज द्वारा किसी प्रकार का विरोध न किया जाना, स्त्री की गुलामों जैसी अवस्था पर प्रकाश डालती है। यातना और भूख से बेहाल होकर मायके भाग जाने वाली बहू के पैरों में लकड़ी का खोड़ा पहना दिया जाता। सास द्वारा अमानुषता की हद तक सताए जाने के प्रसंगों द्वारा बेबीताई ने तत्कालीन समय में स्त्री के साथ किए जाने वाले अन्याय और अत्याचारों के संत्रास पूर्ण जीवन जीने की विवशता पर प्रकाश डाला है। दलित स्त्री के विवाह के बाद न केवल उसकी स्वाधीनता का हक छीना जाता बल्कि उसे सभी अपना गुलाम समझ कर उस पर अत्याचार दमन और उत्पीड़न का कहर बरपा देते। पितृसत्ता का यह खौफनाक चेहरा बेबीताई ने उघाड दिया है। स्त्री जीवन की बेबसी को बड़े ही मार्मिक रूप से अभिव्यक्ती दी है। व्यक्ति जीवन के सुख–दुखों के संदर्भ और प्रसंगों में अधिक समय न देकर बेबीताई उनके आसपास की महिलाओं के जीवन विश्व की वास्तविकता के, दुख–दर्द के एक एक पहलू को उजागर करती है। महार समुदाय में स्त्री श्रम और परिश्रम के कामों में लगातार जुटी रहकर भी घर–परिवार में उसका अस्तीत्वहीन होना उसके दर्द को और गहरा बना देता है। यदि किसी परिवार की आर्थिक स्थिति ठिकठाक होती तो उस घर की स्त्री को घर से बाहर न निकलने की हिदायत होती और परिवार इस बात पर गर्व करता कि उनके घर की महिलाओं का नाखून भी कोई देख नहीं पाता। यह उम्रकैद जैसी सजा झेलनेवाली स्त्री बेजुबान बनकर इसे सहते रहती लेकिन कभी विद्रोह नहीं कर पाती। खेलने–कूदने की आयु में माँ–बाप बेटियों का विवाह कर देते थे, विवाह का अर्थ भी जिस बच्ची को पता नहीं होता उसके सीर पर ससुराल में बड़े कुनबे के सारे काम सौंप दिए जाते और थोड़ी भी गलती होने, देर होने पर सास–ससूर, ननद–देवर और बाद में पति भी मार–पीट करने लगते। बच्ची सयानी होते ही सास की निगरानी शुरु हो जाती, वह पति–पत्नी को एकांत न मिले इसलिए सारा–सारा दिन घर में रहने लगती है और रात को जागते रहती है। वह नहीं चाहती की बेटा और बहू में प्रेम बढ़े, इससे उसके वर्चस्व में कमी आने का डर उसे सताने लगता है। बेबीताई ऐसी अनेक लड़कियों को देख चुकी थी जिनके ससूर ने बहू की नाक काटकर उसे घर से बेघर कर दिया था। स्त्री की गुलामी की यह दास्तान महज पचास वर्ष पूरानी है जिसे बेबीताई अत्यंत व्यथित हृदय से लिखकर बयान करती है।

बेबीताई की यह मान्यता है कि यातना उत्पीड़न से बचने के लिए अक्सर बहुएं अपने शरीर में देवी माता के संचार का नाटक करके ससुराल की यातना से छुटकारा पा लेती। इस प्रकार अंधविश्वास, देवी–देवता, भूत–प्रेत की कहानियाँ रची जाती और इस प्रकार के झूठ–मूठ के दैवी वातावरण में महिलाएं ज्यादातर उन्हीं लोगों से अपनी सेवा–पूजा करवाती जिससे वह क्रोधित और डरी सहमी रहती। येसकर की बारी आने पर दलित परिवार खुद को छोटी सी रियासत का राजा और येसकर की लाठी (घुंगरू लगी) को राजदंड समझने लगता। यह अपने और समाज के दुख को कुछ देर भुलाने का एक प्रयास मात्र होता था। येसकर की बारी का अर्थ या गांव में काम के बदले में घर–घर जाकर शाम को रोटी के लिए गुहार लगाना। यह उसका हक माना जाता। बेबीताई ने

इसका जिवंत चित्रण अपने आत्मकथन में प्रभावपूर्ण तरिके से किया है। भूमिहीन मजदूरों को बासी बची–खुची रोटी देकर गांव के जमींदार, सामंत और सवर्ण वर्ग दलितों पर बहुत बड़ा उपकार किए जाने का घमंड पाले हुए रहते थे। भीख पर पलने वाला दलित समुदाय सवर्णों के इस अहसान के नीचे दबा रहता। उनके मन में स्वाभिमान की भावना कभी पनप ही नहीं पाती। गुलामी के अहसास का अभाव तब तक बना रहता है जब तक आर्थिक रूप से दूसरों (सवर्णों) पर निर्भरता बनी रहती है। बेबीताई दलितों के अंधविश्वासी, रूढी रीतियों के निर्वाह करने की प्रवृत्तियों की आलोचना करते हुए दलितों की इस दयनीय अवस्था के लिए जिम्मेदार जातिप्रथा पर भी प्रहार किए हैं। 'सबसे महत्वपूर्ण पहलू जो सभी दलित लेखिकाओं के आत्मकथनों में उभरकर आया है, वह है पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरंतर शोषण उसके अस्तीत्व को बार–बार नकारा जाना, अस्मिता को कुचला जाना और इन प्रवृत्तियों के विरोध में स्त्री का संघर्ष। दलित स्त्री मध्यवर्गीय है अथवा निम्नवर्गीय, मजदूर है अथवा समाज कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, दलित और स्त्री होने की पीड़ा का अहसास सभी स्त्रियों का एक जैसा है।' (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 35)

आपने शरणकुमार लिंबाळे के आत्मकथन पर लिखी दो इकाई का अध्ययन किया है और दलित स्त्री के सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अमानवीय भयावह शोषण की परम्परा को जाना है। लेकिन दलित स्त्री जीवन की त्रासदी के लिए जिम्मेदार पितृसत्ता की नृशंसता को देखने का स्त्री का नजरिया अधिक पैना है। अपने और स्त्री वर्ग के जीवनानुभवों को अभिव्यक्त करते हुए स्त्री जीवन के उन तमाम जीवन संदर्भों को वह चित्रित करती हैं। यह बुनियादी फक्र सभी पुरुष लेखकों के और स्त्री लेखकों के आत्मकथनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

16.4 दलित मुक्ति आंदोलन से विकसित चेतना

बेबीताई ने दलित वर्ग में व्याप्त अज्ञानता, अंधःविश्वास रूढ़ी रीतियों में आस्था और भाग्यवाद में अटूट श्रद्धा के कारण किसी भी सूरत में परंपराओं से चिपके रहने की प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार किया है। उन्होंने इस वर्ग की प्रवृत्तियों को न बदलते देखकर बड़े ही दुखी स्वर में इसे बगैर पूंछ के जानवर जैसा समाज कहा है। डॉ. आंबेडकर के आवाहन से जागृत हो रहे समाज में बुजुर्ग पीढ़ी अभी भी येसकर की बारी, मरे हुए ढोरों का माँस खाने की प्रथा, पोतराज और देवदासी प्रथा जैसी घोर अंधःविश्वासों, अमानवीय रूढ़ियों को अपने पुरखों की अमानत ही मानने को राजी थी। उन्हें बदलने के लिए बेबीताई के नाना–नानी के प्रयास भी जारी थे। रोज होते वाद–विवाद और चर्चाओं का असर दिखने लगा था। माँ–बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने को राजी होने लगे थे। येसकर की बारी को गुलामी का पर्याय मानना स्वीकार करने लगे थे और मरे हुए जानवरों का माँस खाना वर्जित कर दिया था। डॉ. आंबेडकर के छपे भाषणों को कोई एक पढ़ा लिखा व्यक्ति चबूतरे पर बड़े लोगों को पढकर सुनाता। दलित वर्ग पर इसका प्रभाव बड़ी तेजी से होने लगा था। उन्हें गुलामी का अहसास होने लगा था, बच्चों की पढ़ाई–लिखाई उनके जीवन का उद्देश्य बन चुका था। उनके अंधकारमय जीवन में आशा का नया सूरज उगने की आहट सुनाई देने लगी थी। सहज बोधगम्य भाषा में बेबीताई ने दलितों के जीवन संघर्ष के साथ–साथ डॉ. आंबेडकर के मुक्ति संघर्ष के क्रांतिकारी प्रयासों का भी चित्रण किया है। मुक्ति संघर्ष में स्व निर्णय से सम्मिलित दलित समुदाय के भीतर जगी चेतना के पड़ाव

दर पड़ाव विकसित होते जाने का क्रमवार ब्यौरा भी प्रस्तुत किया है। 'जीवन हमारा' आत्मकथन अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण दलित साहित्य रचनाओं में विशेष स्थान रखता है।

16.5 चरित्र चित्रण

16.5.1 पंढरीनाथ मिस्त्री

बेबीताई ने अपने पिता पंढरीनाथ मिस्त्री के चरित्र चित्रण द्वारा तत्कालीन समय में दलितों (डोम समुदाय) की गरीबी, बेहाली, बेचारगी और पूर्णरूप से आर्थिक निर्भरता का प्रभावी चित्रण किया है। सारी बस्ती के रोजगार की चिंता, उन्हें अन्न मिले और उनका परिवार भूख से बिलखता न रहें इसकी जिम्मेदारी बेबीताई के पिता सरकारी ठेके लेकर पूरा करने के प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। अंग्रेज सरकार के अधिकारी उसकी दीनहीन स्थिति देखकर उसे ठेके पर काम देने की आनाकानी दिखाते हैं तो वह रोजगार की चिंता में झुंड बनाकर बैठे लोगों की तरफ इशारा करके कहते 'ये जो मजदूरों का झुंड बैठा है, ये सब मेरे ही मजदूर हैं इसके फौरन बाद पिता ने उन लोगों को पास आने का इशारा किया। तमाम लोग तत्काल उस गोरे साहब के पास दौड़कर आ गए। गोरा साहब गहरे आश्चर्य से तो भर गया, लेकिन ठेका उसने मेरे पिता को ही दिया।' (जीवन हमारा, बेबीताई कांबळे, पृ. 14)

बचपन में बेबीताई अपनी माँ के साथ नाना–नानी के पास ही रही क्योंकि पिता पंढरीनाथ ठेकेदारी के काम से शहर–शहर जाते रहते थे। पंढरीनाथ की ईमानदारी और काम जल्दी से जल्दी पूरा करके दिखाने की जिद से वह सरकारी अधिकारियों का चहेता ठेकेदार बन गया था। ठेके के पैसे मिलने तक अपने साथ काम करने वाले मजदूरों को खाना खिलाने के लिए वह चिंतित रहते। बेबीताई की मौसी जो सैनिक क्षेत्र में रहती थी का गहना गिरवी रखकर उससे पैसे उधार लेकर उन्होंने सारे मजदूरों के खाने की व्यवस्था स्वयं करके उन्हें भूखे रहने से बचाया। इसीलिए बेबीताई उनके बारे में लिखती है, मेरे पिता का नाम पंढरीनाथ था। पंढरीनाथ ठेकेदार अर्थात् कर्ण का अवतार। मेरे पिता अत्यंत दयालू थे। धन संपत्ति का संग्रह करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। उनकी कोशिश हरदम इतनी ही रहती थी कि हर इंसान सुखी रहे। बेबीताई की माँ को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता सताने लगती तब वह बेबीताई के पिता से कहती 'इतना कमाया लेकिन गाँव में झोपड़ा तक नहीं बनाया। इतना कमाने का लाभ क्या हुआ? आज भी अनाज हमारे लिए महँगा ही है। आगे चलकर बच्चों का क्या होगा? माँ की यह वाजिब चिंता भी पिता के स्वभाव को बदल नहीं सकी। बेबीताई के माता–पिता में इस बात को लेकर अक्सर झगड़ा हो जाता, जिसके कारण उनकी 'माँ का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया होगा। लेकिन पिता को अपने मेहनत और ईमानदारी पर गर्व था। वे लिखती है 'जिस–जिस गाँव में पिताजी ने काम लिया, वहाँ भरसक यही ध्यान रखा कि उनकी ईमानदारी सुरक्षित रहे और लोगों को कोई कष्ट न पहुँचे।' ठेकेदार वर्ग की क्रूरता नृशंसता और मजदूरों के प्रति तिरस्कार का भाव यह उसके स्थायी चरित्र का हिस्सा होता है। ज्यादातर ठेकेदारी का काम सवर्णों को उनके सरकारी अधिकारियों से संबंध और पैसों की लेन–देन (भ्रष्टाचार) के कारण मिलता है और यही सत्ताधारियों की परंपरा भी रही हैं। पंढरीनाथ का ठेकेदार बनना इस परंपरा को तोड़ता है वह भी उसकी ईमानदारी और दयाभाव के कारण उन्हें मिला था।

बेबीताई द्वारा चित्रित पिता का चरित्र हमारे समक्ष दलित वर्ग के बीच आपसी भाईचारा, एक दूसरे की मदद करने की वृत्ति तथा ईमानदार व्यक्तित्व को उभारता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर के भाषण से प्रभावित होकर बेबीताई का नाम पाठशाला में दर्ज करने का कदम भी उनके पिता ही उठाते हैं। ठेकेदारी के काम के सिलसिले में फलटण गाँव में बस गए बेबीताई के पिता ने बेबीताई की शिक्षा पूरी होने तक लगातार ध्यान दिया। रोज अख़बार पढ़ाकर सुनाते और लोग उन्हें शांत बैठकर सुनते थे। डॉ. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में दलित मुक्ति का आंदोलन दिनों दिन तेज होने लगा तो हर एक समाचार पत्र में खबरें छपने लगी। लोग इन ख़बरों को सुनने के लिए आतूर होते और उनके अंदर अपने इंसान होने का अहसास जगने लगा था। उनके क्रांतिकारी विचारों को सुनकर लोगों के भीतर खून गरम होने लगता था। गांव के सभी बच्चे स्कूल पढ़ने जाते। बेबीताई इस बात का जिक्र करती है कि चौथी कक्षा में जाने तक हम लड़कियाँ बड़ी हो गई। सेकंडरी से अंग्रेजी स्कूल मुधोजी हाईस्कूल में हम डोम लोगों की तीस–चालीस लड़कियाँ थीं। हम लोग सयाने हो गए थे।' (वहीं, पृ. 118)

बेबीताई के पिता का कारोबार से मन उचटने से गरीबी की स्थिति में जीने को मजबूर परिवार को चाचा ने आर्थिक मदद करके आगे बढ़ाया। बेबीताई और उनके भाई की पढ़ाई–लिखाई का पूरा खर्चा चाचा ही उठाते थे। पिताजी ने गाँव से बाहर जाना एकदम बंद कर दिया था। सारा दिन चबूतरे पर बैठकर आंबेडकर की जय जयकार करने लगे।' डॉ. आंबेडकर के विचारों के प्रभाव के कारण बेबीताई के पिता पंढरीनाथ ठेकेदारी के काम को छोड़कर दलित समुदाय में चेतना जगाने के कार्य में पूरी तरह से जुट गए थे। फलटण के गीने–चुने दलित नेताओं ने एक बार बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर को फलटण में बुलाने का निश्चय किया और उन्हें आमंत्रित करने के लिए मुबई जाना निश्चित हो गया। पंढरीनाथ मिस्त्री (बेबीताई के पिता) नाना मेंबर और कालू दादा तीनों ही मुंबई पहुँचकर बाबासाहेब को आमंत्रित कर उनके आने की तारीख निश्चित कर आए। बेबीताई इस प्रसंग से उत्साहित हुए दलित समुदाय के उत्साह और समारंभ की तैयारी के बारे में लिखती है, 'बाबा के आने की तारीख लेकर आने पर फलटण में जोर–शोर से तैयारियाँ होने लगी। मैदान में भव्य मंडप सजाया गया। चौरासी गाँवों को निमंत्रण दिया गया। प्रत्येक घर में दस–दस किलो आटा देकर रोटियाँ बनवाई गई। बेसन की कढ़ी बड़े–बड़े कड़ाहों में पकाई गई। मेहमानों को कढ़ी–रोटी खिलाई गई। बाबा के आने के दिन सारा जनसमुदाय पवली मोड़ पर जमा हो गया। चारों तरफ भीड़ ही भीड़ थी। लोग धूप में पसीने से नहा रहे थे। सभी की नजर लोणंद गाँव की तरफ लगी थी। इतने में बाबा साहेब की कार आई। लेकिन कार आगे बढ़ने के लिए रास्ता ही नहीं था। लोग रास्ता देने के लिए तैयार ही नहीं थे। अंत में बाबा वहीं उतर गए। हम लड़कियाँ भी जिंद की तरह वहाँ उपस्थित थी। हम लोगों ने कार का दरवाजा ही पकड़ लिया था। बाबा को हमने अपनी आँखों से देखा–जवान, ऊँची देह, गोरा रंग, चौड़ा माथा, आँखों पर चश्मा, हल्के नीले रंग का सूट और उसी रंग का कोट, पाँवों में काले जूते पहने वह रूआबदार व्यक्ति जनसमुदाय के बीचोबीच खड़ा था। पूरे जन–समुदाय ने जमीन पर माथा रखके उन्हें नमस्कार किया।' थोड़ी देर में बाबा स्टेज पर आए।

सारा जनसमूह डॉ. आंबेडकर का भाषण सुनने के लिए अधीर हो उठा था। लोग उन्हें एकटक देख रहे थे। उनके एक–एक शब्द को ध्यान से सुन रहे थे।

'मेरी दीन–हीन गरीब माँओं और बहनों, हमारी कई पीढ़ियाँ खाक में मिल गई लेकिन अब

समय आ गया है कि हमें और बर्बाद नहीं होना है। हमें आने वाली पीढ़ी को पढ़ाना–लिखाना है। और यह काम अगर कोई कर सकता है तो वह मेरी माताएं और बहने ही हैं। जो माँएं अपने खून से बच्चों का जीवन सींचती हैं, उनमें इतनी ताकत है कि वे स्वर्ग को धरती पर उतार लें। इसलिए बच्चों को पढ़ाने की जिम्मेदारी मैं अपनी माँ–बहनों पर डालता हूँ और यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे इस काम को पूरे जतन व विश्वास के साथ करेंगी।'

16.5.2 नाना

'जीवन हमारा' में क्रांतिकारी व्यक्तित्व के रूप में बेबीताई ने उनके 'नाना और नानी' का चरित्र चित्रण किया है। बेबीताई के नाना अंग्रेज अधिकारियों के साथ बटलर के पद पर काम करते थे। इसलिए वे हमेशा अंग्रेजों के साथ रहने से अच्छी–खासी अंग्रेजी बोलते थे। अंग्रेज अधिकारी बड़े शहरों में ही रहते थे अतः नाना उनके साथ ही रहते थे। बेबीताई लिखती है, 'उनकी वर्दी भी बहुत सुंदर हुआ करती थी। सफेद इस्त्री किया हुआ कड़क सूट, कोट, साफा, साफे पर लाल पट्टा लगा हुआ और उस पर पीतल का बिल्ला। सीधी हाथ के बाजू में दो लाल पट्टियाँ होती थी। इस पहनावे को देख गाँव के लोग नाना जी को मंत्री समझते थे।' ब्रिटिश काल में नाना की महीने की तनख्वाह सोलह रुपये होती थी। शायद उस समय गांव के दलितों ने एक साथ सोलह रुपये भी देखें नहीं होंगे। नानी के लिए प्रत्येक महीने में दस रुपये की मनीऑर्डर आने पर इसी की चर्चा में सारा गांव सारा दिन लगे रहते। दलित परिवार या तो दिहाडी के मजदूर या बेगार करने को मजबूर रहते जहाँ उन्होंने दस रुपये भी एक साथ कभी नहीं देखें थे। गांव छोड़कर जो दलित शहरों में मजदूरी या दूसरा कोई काम ढूंढ लेता उसी की माली हालत ठीक ठाक होती थीं वर्ना भीख में मिले बासी रोटी के टुकड़े और बासी दाल–सब्जी पर सारे परिवार के पेट पलते थे। पैसों के रूप में मजदूरी मिलना कम से कम गांव में उन्हें नसीब नहीं था। सभी को नाना पर गर्व था कि वह गोरे साहब के पास नौकरी करता है, अंग्रेजी में बात करता है, अनेक भारी–भारी ग्रंथ रखता है और नानी के लिए अर्थात् सीता भाभी के लिए हर प्रदेश के कपड़े, जेवर लाना नहीं भूलते। नाना और नानी ने पहली बार जेजूरी में डॉ. भीमराव आंबेडकर का भाषण सुना तो वे इतने हर्षोत्साहित हो गए कि उसी दिन से गांव के चबूतरे पर डॉ. आंबेडकर के भाषण में व्यक्त विचारों की सभी के साथ चर्चा करते। नाना–नानी डॉ. आंबेडकर के भाषण से इतने प्रभावित हुए थे कि गांव में घुम–घुमकर बच्चों को पाठशाला भेजने के लिए माता–पिता को समझाने लगेंगे। डॉ. आंबेडकर के विचारों का प्रचार–प्रसार करने की पहल करने वाले दलित दंपत्ति जीवन भर इस कार्य को समर्पित रहे। बेबीताई ने अपने आत्मकथन जीवन हमारा में इस बात को विस्तार से लिखा है।

नाना के चरित्र चित्रण से एक ऐसे पहलु पर प्रकाश डाला गया है कि दलितों में यह अहसास ही नहीं था कि उन्हें जिस हालत में जीने की आदत डाली गई थी वह उनके ऊपर अन्याय है। यह धर्म और शास्त्रों की साजीश रही की दलितों को अस्पृश्य बनाए रखकर उनके घर–बाहर, के काम करने और खेती के उत्पादन के लिए एक बेगारी में काम करने वाला गुलाम सदैव उनके मातहत रहें। इसलिए उन्हें कभी किसी सवर्ण या बुद्धिवादी ने यह समझाने का प्रयास जानबुझकर नहीं किया। पहली बार डॉ. भीमराव आंबेडकर के रूप में दलित समुदाय को गुलामी से मुक्त करने का प्रयास करने वाला नेता हुआ। नाना–नानी ने अपना अगला जीवन इसी परिवर्तन के कार्य के लिए सौंप दिया।

16.5.3 नानी

नानी कभी नाना के साथ शहरों में नहीं रहीं वह सदा ही गांव में रहती रही। बेबीताई उनकी माँ और भाई ननिहाल में ही रहते जहाँ बेबीताई का बचपन बड़े नाजों से पला। गांव के अन्य दलित घरों में हमेशा अन्न का अकाल बना रहता। सभी औरतें सुबह उठकर चक्की पर आटा पीसती और कुछ रोटियाँ पकाकर बच्चों को खिलाकर खुद भी खा लेती। बेबीताई लिखती है कि जब भी उनकी नानी चक्की चलाने लगती तो अपनी गुदड़ी से निकलकर मैं उनकी दाहिनी जाँघ पर सिर रखकर सो जाती। नानी बायाँ पैर लम्बा कर लेती और अपना आँचल मेरे ऊपर फैला देती। नानी चक्की पिसते हुए अपने नाती के नाज–नखरों, शरारत, सुंदरता का वर्णन करती। उस गीत में ही वे तरह–तरह की कल्पनाएं कर अपनी अभिलाषाओं को उतार लाती थीं :

मेरी नाती फूल है जाई
गोद में सोई है बेबीबाई
पड़ोसन की है नज़र खराब
कहीं इसे आ न जाए बुखार
राई–नमक उतारूँ बारंबार
गोद में सोई है फूलों की बहार।

शहर में अंग्रेज अधिकारी के पास बटलर की नौकरी करने वाले नाना हर महीने नानी को दस रुपयों की मनीऑर्डर भेजते। सारे गांव में इसकी चर्चा चलती, नानी की आर्थिक स्थिति सभी दलित परिवारों से अच्छी थी लेकिन नानी को इस बात का घमंड करते कभी किसी ने नहीं देखा। जंगल से लकड़ी काटने भी वह जाती अन्य औरतें लकड़ी काटकर घर लौटने के बाद भूखी प्यासी होती। घर में सुबह पकाई रोटी का एक कौर भी नहीं बचा होता। ऐसे में सभी को नानी का ही सहारा होता। नानी उन्हें धूप में सुखाए हुए टोकरी भर रोटी के टुकड़े देती, जिसे खाकर सभी औरतें भूख मिटाती। बेबीताई के अनुसार नानी को दूसरों की मदद करने में सुकून मिलता वह किसी को अपने घर से खाली हाथ नहीं लौटती। जो उनसे बन पड़ता वह जरूर करती। तुलसी पंद्रह दिनों से बहुत बीमार थी। एक दिन उसे रसेदार बोंबिल (सूखी मछली) खाने का बहुत दिल हुआ। पर उसके पास एक भी पैसा नहीं था। वह नानी के पास आई और कहने लगी– 'सीता भाभी, मैं बहुत बीमार हूँ। मुझे बोंबिल खाने का बहुत मन हो रहा है, लेकिन बोंबिल लाने के लिए पैसे नहीं है। आप मुझे एक गिन्नी उधार दे दो। लकड़ी बेचकर चुकता कर दूंगी।'

नानी ने तुरंत तुलसी को एक आना दे दिया। नानी केवल उदार ही नहीं क्रांतिकारी भी हैं। नाना के साथ डॉ. आंबेडकर का भाषण सुनकर आए तो दोनों ही आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर गांव–गांव, घर–घर घुमकर डॉ. आंबेडकर के विचारों को बताते। मश्त जानवर के मांस न खाने की बात नानी के दिल को छू गई थी। एक दिन गांव में मरे जानवर के मटन के बंटवारे के बाद नानी ने गुस्से से तिलमिलाकर यह आह्वान किया कि आज से जो लोग भी ढोर का माँस खाएगा। उसे सूअर की कसम, वो सूअर का मांस खाएगा। डोम और मुसलमान दोनों के धर्म में सूअर का नाम तक लेने की मनाही है। सूअर का नाम लेते ही लोग थू–थू करने लगे। लोगों ने अपने हाथ का मटन दूर फेंक दिया। नई पीढ़ी के युवा लड़कों ने सीता भाभी की बड़ी तारीफ की कि उनके कारण आज

से गांव के लोग शपथ लेंगे कि ढोर–डंगर का माँस नहीं खाएंगे। नानी अर्थात् सीता भाभी का चरित्र एक परोपकारी स्त्री होने के साथ ही क्रांतिकारी कदम उठाने वाली स्त्री के रूप में चित्रित करके लेखिका ने तत्कालीन स्त्री के गरिमामयी चरित्र को रेखांकित किया है।

16.6 सारांश

'जीवन हमारा' आत्मकथन दलित समाज जीवन के व्याप्त यातना, भूख, वंचना, उत्पीड़न, अवमानना और शोषण का जिवंत दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत हुआ है। स्त्री रचनाकार के लेखन में स्त्री होने दलित होने और गरीब मजदूर होने के कारण आने वाले बहुआयामी शोषण की भीषण वास्तविकता का चित्रण भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था और जातिव्यवस्था के जटिल स्वरूप पर विचार करने के लिए प्रवृत्त करता है। इस इकाई की केन्द्रीय विषय वस्तु दलित समुदाय के जीवन यथार्थ जो न केवल विलक्षण है अतीशय विद्रूप भी है से हमें अवगत कराती है। इस रचना में महार जीवन के यथार्थ की विरूपता का संयम, सहानुभूति और आत्मीयता से जैसा चित्रण किया गया है वैसा हिंदी साहित्य में विशेष उल्लेखनीय है। बेबीताई के पिता पंढरीनाथ मिस्त्री, नाना और नानी के चरित्र–चित्रण द्वारा दलित व्यक्तित्व, उनके स्वप्न आकांक्षा और परिवर्तन के प्रति उठाए गए क्रांतिकारी कदमों की आहट से हमें परिचित कराता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 17 जीवन हमारा-II

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 दलित वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

17.3 अस्पृश्यता की अमानवीय प्रथाएं

17.4 दलित स्त्री शोषण की भीषण वास्तविकता

17.5 डॉ. आंबेडकर का मुक्ति आंदोलन : प्रभाव और चेतना

17.6 व्यक्तिगत ही समष्टीगत

17.7 सारांश

खंड के प्रश्न

कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

जीवन हमारा की पिछली इकाई में दलित आत्मकथनों में स्त्रीवादी दलित आत्मकथन के रूप में विशिष्ट पहचान रखने वाले आत्मकथन के विभिन्न जीवन संदर्भों से परिचित हुए। जीवन हमारा की इस दूसरी इकाई में डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी से प्रभावित दलित समुदाय में आत्मबोध चेतना के विस्तार से आए बदलाव को समझेंगे। दलित स्त्री की ऊर्जा और शक्ति की प्रतिबद्धता ने डॉ. आंबेडकर को विश्वास दिलाया कि मौजुदा स्थिति को बदलने की दलित स्त्री की जागरूकता क्रांतिकारी हो सकती है। दलित स्त्री में जगे के लिए अस्मिताबोधी चेतना से हम रूबरू हो सकेंगे। दलित स्त्री जीवन में व्याप्त भीषण यातना, पितृसत्ता के आतंक और जीवन संघर्ष की व्यापकता को 'जीवन हमारा' में शोषण, गहराई ये प्रस्तुत किया है। स्त्रीवादी दृष्टि से दलित समुदाय में व्याप्त स्त्री के शोषण दमन की वास्तविकता को समझने का नया दृष्टिकोण इस इकाई के अध्ययन से हमें प्राप्त होगा। आइए इस इकाई का अध्ययन करें और 'जीवन हमारा' के आलोक में आप निम्नलिखित वास्तविकता से परिचित होंगे;

- ब्राह्मणवाद के दर्शन और धर्म के दबाव के बीच अभिशप्त दलित जीवन की सच्चाई से;
- सवर्णों के दंभ और दलित समुदाय की बेचारगी से;
- दलित स्त्री की सुख के तलाश में रची फैंटसी और सांस्कृतिक दुनिया से;
- सवर्ण वर्ग और दलित पितृसत्ता के भीषण दमन में बेबस स्त्री जीवन की त्रासदी से;

- डॉ. आंबेडकर के दलित मुक्ति आंदोलन में दलित स्त्री की स्वयं स्फूर्त भागीदारी से विकसित चेतना से; और
- दलित समाज के जागरण में बौद्ध धम्म–दर्शन की प्रेरक भूमिका और डॉ. आंबेडकर के क्रांतिकारी दर्शन से।

17.1 प्रस्तावना

'जीवन हमारा' की विशिष्टताओं का प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करते समय हमें दलित स्त्री आत्मकथन में पहली बार अभिव्यक्त हुए दलित स्त्री जीवन संदर्भों के आलोक में इसके विभिन्न पहलुओं को देखना होगा। पुरुष आत्मकथनों से जीवन हमारा किस रूप में विशेष है जिसमें दलित चेतना के साथ–साथ स्त्रीवादी चेतना की अभिव्यक्ति किस रूप में रेखांकित की गई हैं। दलित स्त्री जीवन में क्या मात्र दरिद्रता, वंचना, भूख, गरीबी और उत्पीड़न के अलावा जीवन में कुछ सुख आनंद के पल भी आते हैं अथवा नहीं, इसकी पड़ताल भी जरूरी हैं। दलितों के जीवन में व्याप्त गुलामी, यातना की दर्दनाक दशा के लिए जिम्मेदार सामाजिक–आर्थिक कारणों बेबीताई कांबळे ने किस प्रकार रेखांकित किया है। दलित स्त्री के तिहरे भाोशण कारणों की मार्मिक छानबीन करते हुए धर्म, पितृसत्ता और वर्चस्व की संस्कृति की सच्चाई को बेनकाब करके समाज को आइना दिखाया है। जीवन हमारा व्यक्तिगत जीवन केन्द्रीत आत्मकथन न होकर वह समुदाय के जीवन की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सच्चाई के चित्रण द्वारा दलित समुदाय की गरीबी, गुलामी और बेचारगी भरे जीवन की तस्वीर सामने लाती है। 'जीवन हमारा' की वैचारिक पृष्ठभूमि और शिल्प की विशेषताओं का भी मूल्यांकन जरूरी समझते हुए उपरोक्त विशेषताओं के साथ भाषागत विशेषताओं का भी विस्तार से मूल्यांकन जरूरी है।

17.2 दलित वर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

ब्राह्मणवाद के शिकंजे में अभिशप्त दलित महारों की बस्ती वीर गांव के दक्षिण की ओर बसी हुई थी और गांव तथा बस्ती के बीच में नागफनी की घनी बाड़ थी। यह कुदरती थी या अछूतों को देखने से अशुभ की आशंका से लगाई गई थी इसे बड़े बुजुर्ग ही जानते होंगे। 'जीवन हमारा' में दलितों की दयनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण हमें मानव के पाषाणयुग में जीने के तरीके की याद दिलाता है। "करीब–करीब कुल मिलाकर पंद्रह–सोलह घर थे। उनमें दो–तीन घर ही आर्थिक रूप से थोड़ा सम्पन्न थे। बाकी सारे घर चिर–दरिद्र कीचड़–मिट्टी से लिपे छोटे–छोटे घर। दरवाजे पर पानी पीने के लिए मिट्टी का बड़ा घड़ा, लेकिन उसका मुँह एकदम छोटा, इसलिए उसे 'केली' कहते थे। उस केली के मुँह पर नारियल की खोपड़ी का आधा टुकड़ा रखा होता उस खोपड़ी में तीन छेद बने होते। दो छेदों को ऊँगली से बंद कर तीसरे छेद पर अंगूठा लगाकर वही से गटागट पानी पीते थे। वही दरवाजे के पास टूटा–फूटा चूल्हा। चूल्हे के पास दो मिट्टी के बरतन। लकड़ी का चमचा, बीच में फूटा हुआ लोहे का तवा। आटा गूँथने के लिए लकड़ी की परात। रोटी पलटने के लिए लोहे का लम्बे हाथ जैरा पतरा। एक कोने में आटा पीसने की चक्की। चूल्हे के उपर रस्सी। यह रस्सी हमारे लिए जनेऊ की तरह पवित्र होती, यह हमारे जन्म की निशानी होती। उस पर मरे हुए जानवरों की खाल सुखाने के लिए डालते थे। दूसरे कोने में मैला–कुचैला, फटा हुआ बिस्तर।" दलित गृहस्थी की इस सामग्री से घर के सारे लोगों की गुजर–बसर होती। दरीद्रता, गरीबी,

अभाव में जीने की यह परिपाटी दलितों पर धर्म द्वारा थोपी गई थी। मनुविधान में स्पष्ट रूप से निर्देश है कि दलित धातू के बने बर्तन इस्तेमाल नहीं करेंगे। धन कमाना या संग्रह करने, भूमि खरीदने से उन्हें वर्जीत किया गया। उनके लिए मनु का आदेश है कि दलित केवल उतरन पहनेंगे, बेगारी पर मजदूरी करके उसके बदले में सवर्ण के घर से रोटी माँग कर खाएंगे। इस परिपाटी को तोड़ने पर गांव के दबंग सामंत, बड़े जाति वाले किसान महाजन, ब्राह्मण दलित का जीना मुश्किल कर देते। बलुतेदारी प्रथा का जन्म भी इन्हीं नियमों के पालन हेतु हुआ है। जिसके हिस्से येसकर की बारी आती वह अपने आप को बहुत भाग्यशाली समझने लगता सारे गांव से रात की रोटी माँगकर लाने की जिम्मेदारी उसी की होती। इकट्ठा हुआ अन्न तब सभी परिवारों में बराबर–बराबर के हिस्से में बाँट दिया जाता। यह अन्न उनके दिनभर के खेतों, खलिहानों में काम करने, जानवरों की देखरेख, गोबर इकट्ठा करने, गौशाला की सफाई, घरों की लिपाई–पुताई जैसे परिश्रम के काम के बदले में मिलता। साल के ग्यारह महीना रात की बची खुची रोटी और बासी दाल सब्जी खाने के आदी हो चुके महार बस्ती के लोगों के लिए 'आषाढ़ के पूरे चार सप्ताह डोम गांव में खुशी की लहर सी छाई रहती। हर मंगलवार और शुक्रवार चस्कर डोम (समाज द्वारा सामाजिक कार्य के लिए मनोनीत डोम) बड़े–बड़े टोकरे लेकर देवी के मंदीर में बैठता था। सारे गांव वाले देवी के लिए पाँच पकवानों का नैवेद्य लेकर आते। तली हुई वस्तु, दही, भात, पकौड़े, सब्जी इस तरह की अनेक खाने की चीजें होती। देवी की गोद–भराई के लिए ब्लाउज का कपड़ा और चूड़ियाँ होतीं। दो–तीन टोकरे उस चढ़ावे से भर जाते। एक दो टोकरे तो नारियल से ही भर जाते। शाम होने पर दो तीन लोग उन टोकरों को नीचे चबूतरे पर लाते। एक बड़ा–सा कंबल चबूतरे पर बिछाकर नैवेद्य की सामग्री उस पर उलट दी जाती। फिर दूसरे कंबल पर गांव के बाकी डोम परिवारों के लिए बराबर के हिस्से किए जाते। उसके बाद एक डोम पूरे गांव में चिल्लाता फिरता–'अरे लोगों, बच्चों औरतों आओ रे, आकर अपना अपना हिस्सा ले जाओ।'

'आवाज सुनते ही हर घर की टोली तड़ातड़ उस चबूतरे की तरफ दौड़ पड़ती, एक–एक घर से सात–सात, आठ–आठ नंग–धडंग नाक बहाते बच्चे उस टोली में हेाते चबुतरे के चारो ओर पहुँची ये टोलियाँ अपने–अपने हिस्से पर टूट पड़ती। जैसे अन्न के गोदाम पर भूखों का आक्रमण हुआ हो।'

अच्छे अन्न को देखने को तरसते लोग स्वाभाविक रूप से पकवान को पाकर अपना लोभ संवरण नहीं कर पाते। भूख और गरीबी जिनके जीवन का हिस्सा बन चुका हो उन्हें अच्छे अन्न की हमेशा आस लगी रहेगी। 'भूख दलित जीवन का अभिन्न हिस्सा है संपत्तिहीनता साधनहीनता ने जीवन में सदैव आर्थिक विवंचना भर दी है। गांव–गाड़े की रखवाली करना मरे ढोंरों को उठाना, सवर्णो के घरों में गाय–भैंसों का गोबर साफ करना, सानी–पानी देना, खेतों में बंधुआ मजदूर के रूप में काम करना, रात को गांव में पहरा देना, गांव–गांव जाकर सवर्णों के विवाह और मौत की खबर पहुँचाना। इसे येसकर का काम माना जाता रहा। काम के बदले में रात के समय घर–घर घूमकर रोटी के लिए गुहार लगाना। हर घर से मिले बची–खुची रोटी के टुकड़े लाकर सब के साथ बांटकर खाना। सवर्णों पर निर्भरता ने दलितों को जीवन भर गुलाम बनाकर रखा। 'जीवन हमारा' में भूख मिटाने के लिए मुर्दार का मांस खाने की बेबसी को बेबीताई ने चित्रित किया है। भूमिहीन दलितों को धन कमाने के कोई भी संसाधन उपलब्ध नहीं थे। पेट की क्षुधा को शांत करने के लिए मुर्दार मांस उन्हें सहज उपलब्ध हो जाता। 'पहले जानवर अक्सर बीमार पड़ जाते थे। इस दिनों डोम (महार–मांग) लोगों की चांदी रहती। जानवर के मरने पर मांस मिलने की उम्मीद होती। डोम गृहिणियाँ पांच–छह टोकरे भरकर सूखा मांस रख

लेती। अन्न का दाना नहीं है तो कोई चिंता की बात नहीं। निकाला सूखा मांस, डाला बर्तन में, सूखी चर्बी में पकाया। फिर बड़े और बच्चे मोहल्ले में खाते हुए घुमते।' इस प्रकार की घटनाओं का चित्रण बलूतं, काटयावरची पोटं, माइया जल्माची चित्तरकथा, यादों के पंछी, अक्करमासी आत्मकथनों में भी आता है। इन सभी आत्मकथनों में भूख और लाचारी के अंतर्संबंधों तथा दलित श्रमजीवी वर्ग की दयनीय आर्थिक स्थिति को बड़ी मार्मिकता से उकेरा गया है।'' (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 16)

सामाजिक संरचना में सबसे निचली पायदान पर खड़ी दलित स्त्री सदियों से जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पाने के लिए अनथक परिश्रम करके भी हीनदीन स्थिति में जीने को अभिशप्त है। बहिष्कृतों का वंचित जीवन जीते हुए। दिन रात अने परिश्रम से गांव के सामंतों, जमींदारों के खेत जोतकर अन्न के गोदाम भरते हैं, वे ही अन्न के दाने–दाने के लिए मोहताज हो जाते हैं। गांव, समाज का वे भी अभिन्न हिस्सा है और समाज का संपन्न वर्ग केवल उन्हीं के श्रम पर ऐशोआराम का सुखमय जीवन जी रहा है। दलितों के अतिरिक्त श्रम का मूल्य उन्हें कभी भी धन के रूप में नहीं दिया गया। उनके अतिरिक्त श्रम के बदले में उन्हें बासी बचा खुचा खाना, उतरन, खेतों की मिट्टी में मिला हुआ अनाज लेने का अधिकारी होने के झाँसे में रखकर और इसे ही 'बलुतेदारी' के नाममात्र अधिकार देकर सदियों तक शोषण किया जाता रहा। हजारों वर्षों की आर्थिक विपन्नता ने दलित जीवन को मात्र भूख, याचना, निर्भरता का पर्याय बना दिया। बेबीताई कांबळे दलित जीवन के हर एक पहलू को बहुत स्पष्ट और साफ शब्दों में अभिव्यक्ति देकर सामाजिक संरचना में उपस्थित भीषण सच्चाई से हमें रूबरू कराती है।

17.3 अस्पृश्यता की अमानवीय प्रथाएँ

जन्माधारीत अस्पृश्यता थोप कर हिंदू धर्म ने समाज के सबसे अधिक श्रम करने वाले दलित समुदाय को सामाजिक निम्नताबोध के अहसास से इस कदर दबाकर रखा कि वह अपने निम्न होने को अपना भाग्य मान बैठा। अस्पृश्यता का निर्वाह वह स्वयं भी उसी अंदाज में करने में धन्यता मान बैठा कि सवर्ण उसके स्पर्श से अथवा किसी भी प्रकार के व्यवहार से अपवित्र न हो सकें। अब यह उसके रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा बन गया। उसकी इस दीन–हीन स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाने की एक व्यवहार प्रणाली, ही बन गई। दलितों को अभद्र से अभद्र गालियाँ देना, हर पल अस्पृश्य होने का अहसास कराना तथा परिश्रम के काम करने की जिम्मेदारी के बोझ से लादकर उन पर मानो अहसान जताने की परिपाटी बनाई। धर्म और परंपराओं के दबाव में जीवन की जिजीविषा के कारण अपार कष्ट करके गांव के अधीनता के कारण कभी विरोध या संघर्ष करने का विचार भी वे कर नहीं सके। वेदना अपमान झेलते रहने के आदी बन गए क्योंकि किसी भी प्रकार का नकार दर्शाने पर अथवा विद्रोह करने पर मौत के घाट उतारना सवर्ण वर्ग की हिंसात्मक अहंवादी प्रवृत्ति बन चुकी थी। बेबीताई अस्पृश्यता के दंश को झेलने के अपमानजनक प्रसंगों का चित्रण करके दलित स्त्रियों की बेबसी को बयान करती है। "गर्मी में औरतें लकड़ियाँ लाकर बेचतीं, तो बारिश में घास लाकर बेचा करतीं, रात को ही कुल्हाड़ी की धार तेज कर ली जाती। कुल्हाड़ी और रस्सी को एक कोने में रख दिया जाता। सुबह एक दूसरे को आवाज देकर सभी औरतें लकड़ी लाने निकल पड़तीं। एक–दो बजे तक औरतें सिर पर लकड़ियों का बोझ लिए लौटतीं।" दिनभर के परिश्रम से जंगल से काट लाई लकड़ियों के गट्ठर बनाकर जब औरतें लकड़ियाँ बेचने के लिए घर से निकलती तो वे अपने झुंड के साथ सड़क के एकदम किनारे–किनारे चलती। "रास्ते में गांव का कोई सवर्ण दिखाई पड़ जाता तो ये औरतें रास्ता छोड़ किनारे के

झाड़–झंखाड़ में उतर जातीं। जैसे ही सवर्ण व्यक्ति ऐन सामने आता, वे सब औरतें आँचल से सिर ढककर एक स्वर में कहतीं– 'अन्नदाता, हम डोमनियों का आपको पायलागू।' वह सवर्ण गर्व से गर्दन तान, बड़ी अकड़ से हूँ–हूँ में जवाब दे आगे बढ़ जाता। औरतें झाड़–झंखाड़ से निकलकर फिर रास्ते पर आ जाती। सारे रास्ते इन डोमनियों का यह पायलागू कार्यक्रम चलता ही रहता, फिर चाहे सड़क पर आ जाने वाला, किसी सवर्ण का नंग–धड़ंग नाक बहाता छोटा बच्चा ही क्यों न होता। अगर कोई नई–नवेली बहू उन डोमनियों के झूंड में होती और वह सवर्ण को देख पायलागू नहीं कह पाती तो सवर्ण बवाल मचा देता था। वह दहाड़कर बोलता – ऐई, ये कौन मूर्ख घमंडी डोमनी है? क्या तुम्हारे पाटील की बहू है? क्या इसे पता नहीं है कि हम लोगों के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए?' इस प्रकार जाति श्रेष्ठता के घमंडी सवर्ण को डोमनियों का पायलागू न कहना बर्दाश्त नहीं होता। चाहे दलित स्त्री अथवा पुरूष हो उनके रास्ते में या सामने से कोई सवर्ण व्यक्ति या उनका नाक बहाता, नंग–धडंग बच्चा भी रास्ते में आ जाए तो उसे भी 'पायलागू' कहने की यह प्रथा दलितों को निम्नबोध का अहसास दिलाने और उन्हें उनकी हदों में रहने के लिए धमकाया जाना, अवमानीत किया जाना जातिप्रथा की परंपरा को अधिक से अधिक कठोर बनाती जाती है। सवर्ण औरतें भी दलित औरतों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए उनसे छुआछूत का बर्ताव का अतीशय कठोर रूप और व्यवहार में उनको अपमानीत करने की कोशिश करते नजर आती है। दलित औरतें लकड़ी के गट्ठर बेचने सवर्णों की गलियों में पहुँचते ही 'माई, डोमनी लकड़ी लाई है बेचने को' की आवाजें लगाती। 'गट्ठर का मोलभाव हो जाने पर डोमनी महिला को वह गट्ठर घर के पीछे बने दालान में ले जाकर रखना होता था। दालान में पूरा–पूरा गट्ठर खोला जाता और एक–एक लकड़ी को बहुत ध्यान से देखा जाता। ब्राह्मणी भी तनिक दूर खड़े होकर एकटक उन लकड़ियों को देखती। यह बारीक जाँच–परख इसलिए होती कि कहीं इन लकड़ियों में डोमनी का बाल वगैरह न अटका हो।'

जाँच परख के दौरान गृहस्वामिनी तेज आवाज में आदेश देती– 'सुनो डोमनियों, लकड़ियाँ जरा ध्यान से देखकर रखो। कहीं बाल–वाल लगा होगा तो हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। तुम्हें क्या फरक पड़ता है, लेकिन हमारी तो फजीहत हो जाएगी। पूरे घर की एक–एक वस्तु धोनी पड़ेगी। तुम लोगों की वजह से हमें कितना परेशान होना पड़ता है। भगवान हमसे नाराज हो जाएंगे। इसलिए कहती हूँ कि जरा लकड़ियों को अच्छी तरह देखकर रखो।' इस अपमानजनक माहौल से दलित औरतें भले ही परेशान होती होगी लेकिन उपरी तौर पर वे भी सवर्ण औरतों के व्यवहार को और धर्म के भय को स्वीकार करके जवाब देती 'अरे भाई, हम पागल हैं क्या? हमें क्या पता नहीं हैं कि तुम लोग कितने नियम–धर्म वाले लोग हो? हम क्या देवताओं को अपवित्र करेंगे?' यह उन श्रमिक औरतों के श्रम के ऐवज में उन्हें ही हीनताबोध से ग्रसित होकर अपनी रोजी–रोटी को बचाएं रखना होता। जातिप्रथा और छुआछूत की इस अघोरी परंपरा ने परजीवियों को अहंकार, दंभ और वरिष्ठ होने का तोहफा जो दे दिया। ईश्वरनिर्मित बताकर निम्न जातियों को अपने दबाव में रखने तथा सामाजिक दृष्टि से हीनताबोध का अहसास कराने का परवाना धर्म ने बहाल जो कर दिया। धर्म के भय से चूपचाप इसे सहते जाने के अलावा दलितों के पास विरोध की कोई गुंजाईश उनके पास नहीं थी। श्रम और श्रमिकों की ऐसी दूर्दशा अनादर और तिरस्कार की जड़ यहाँ के धर्म द्वारा निर्धारित श्रेणी विभाजन और श्रेणी के साथ व्यक्ति के सम्मान और अपमानजनक व्यवहार पर अमल करने में धर्म के आदेश के आवरण के नीचे जाति दंभ भी शामिल है। जाति उन्मूलन का सिद्धांत इस जाति दंभ से उत्पन्न श्रेष्ठ और निम्न श्रेणी विभाजन के जड़ पर प्रहार करता है। डॉ.

आंबेडकर इस देश के स्वाधीनता की बुनियाद जाति विहिन समतावादी समाज के निर्मिति पर रखने का आग्रह करते रहे। लेकिन कांग्रेस के गरम दल के नेताओं ने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक विषमता और स्त्री उत्थान के मुद्दों को स्वतंत्रता के मुख्य मुद्दों में स्थान नहीं दिया। उनका मानना था यह हमारे सामाजिक सांस्कृतिक मसले स्वाधीनता के बाद हम आपस में सुलझा लेंगे। देश की स्वाधीनता हमारी प्राथमिकता है। स्वाधीनता की आधी शती बित जाने के बाद भी जाति के अभिशाप और स्त्री पर पुरूषसत्ता के आधिपत्य से देश के दलित और औरतों की अस्मिता का और जनसंख्या के अनुपात में आर्थिक, राजनीतिक भागीदारी के लिए संघर्ष जारी है। देश की भौतिक प्रगति तो हुई है लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था कुरीतियों के पालन करने में ही धन्यता मानती है। हाशिए के वर्ग हाशिए पर रहे इसलिए उन पर जातिगत शोषण, उत्पीड़न, हिंसात्मक हमले जैसी पाशविक रीतियों का सरेआम प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों को घर की चारदिवारी में बंद होकर पितृसत्ता के अधीन रहे इसके लिए तमाम हिंसा उत्पीड़न के जघन्य तरिके अपनाकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक भागीदारी से उन्हें दूर रखे जाने के प्रयास अभी भी जारी है। बेबीताई कांबळे ने स्वतंत्रता के पहले की स्थिति का चित्रण करके अपमानीत शोषित मानवता की जटिल वास्तविकता से परिचित किया है। आत्मकथन व्यक्ति निष्ठ अनुभवों से अधिक दलित समूह के दैनंदिन व्यवहार, हात की चक्की पर आटा पिसते हुए गाती दलित महिलाएं, सवर्ण औरतों द्वारा उन्हें अपमानीत किए जाने के प्रसंग, दलित औरतों की विशेषकर जच्चा की होनेवाली दयनीय स्थिति, अंधविश्वासों के कारण होती मृत्यु, दरिद्रता, अभाव, शिक्षा के अभाव में स्वास्थ्य के प्रति नकारात्मक रवैया दलितों के पाँच–छह दिन चलने वाले विवाह सभारंभ इत्यादि दलित जीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के विस्तृत चित्रण द्वारा उस समय के दलित जीवन का संपूर्ण फलक हमारे समक्ष खोलकर रख दिया है।

17.3 दलित स्त्री शोषण की भीषण वास्तविकता

बेबीताई कांबळे ने दलित स्त्री के तिहरे शोषण की व्यथा कथा को अपने लेखन के माध्यम से बड़े ही बेबाक रूप में अभिव्यक्ति दी है। पचास वर्ष पूर्व के महार समुदाय (दलित) की स्त्री, उसके हिस्से में स्त्री होने की विडम्बना, उत्पीडन, यातना, अंतहीन श्रम और वेदना की मार्मिक पड़ताल की हैं। विवाह का मतलब न समझने वाले किशोर वय में विवाह, बहू के प्रेम में माँ–बाप को बेटा कहीं भूल न जाए इस भय के कारण बहू पर सतत पहरा देना। छोटी सी उम्र में पूरे घर के काम की जिम्मेदारी सौंप देना। यह परंपरागत हिंदू धर्म द्वारा स्त्री उत्पीड़न स्त्री को अधिकारों से वंचित किए जाने के धर्मोपदेश का ही व्यवहारिक रूप है। पितृसत्ता और जातिगत अपमान के बाहरी शोषण झेलने की दलित–स्त्री–जीवन की त्रासदी यहीं खत्म नहीं होती वह घरेलू हिंसा और शोषण को झेलने के लिए भी अभि ाप्त है। बेबीताई ने चार–पाँच दिन चलने वाले विवाह समारोह में वर–वधु को मिलने वाला सम्मान, हँसी–ठिठोली, बारात आने पर होने वाली वर और वर के परिवार की पूछताछ, तमाम रीति रिवाजों के खुशगवार माहौल में विवाह समाप्त होने का विस्तार से वर्णन किया है। लेकिन चार दिन के बाद ससुराल आई वधू के लिए नये माहौल में खुशियों की जगह दुख की घडी उसका इंतजार कर रही होती। 'ससुराल पहुँचते ही उसके सर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता। सबसे पहला काम उसे रोटी बनाने को दिया जाता और वह भी दो–दो टोकरी भरकर। ढेर सारी रोटियाँ सेंकनी पड़तीं और अगर कोई रोटी कच्ची रह गई या जल गई तो उसकी सास आस–पड़ोस के लोगों को बुलाती और उसकी बनाई रोटियाँ लोगों को दिखाती' (जीवन हमारा, पृ. 105)

बहू की पहली माहवारी आने पर तो सास और अधिक चौकन्नी रहकर बेटे–बहू को मिलने का मौका नहीं देती। 'पहली माहवारी का मतलब सूली पर चढ़ना होता। सास बहुत परेशान हो जाती। बहू और लड़के की पहरेदारी करते हुए सास सारे दिन घर में बैठी रहती। लड़का चबूतरे से घर आता तो वापस उसे चबूतरे पर भेज देती। जबकि लड़का अपनी पत्नी से बात करने को तरस जाता लेकिन जालिम सास अपने बेटे को बहू से बराबर दूर रखती।' सास द्वारा बहू को सताने की परंपरा का निर्वाह हमारी भारतीय संस्कृति की देन है। पुरुषसत्ता द्वारा स्त्री की स्वाधीनता छीनने के लिए चालाक पुरुषवर्ग स्त्री के द्वारा ही अपना मकसद पा लेता है। पुरुष अहंकार किस कदर हिंसक और शोषक हो सकता है इसे हम बेबीताई द्वारा चित्रित दर्दनाक रौंगटे खड़े करने वाली हिंसक प्रवृत्ति में देख सकते हैं। 'आदमी अपनी औरत को जानवरों की तरह पीटता। किसी औरत का सिर फूट जाता तो कोई बेहोश हो जाती। किसी की कमर टूट जाती। इतनी मार खाने पर भी उन पर किसी को तरस नहीं आता। पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं, बगैर तेल के बिखरे बाल, टूटा–थका बदन प्रत्येक घर की बहू का यही हाल होता। इस अपार दुःख को सहन न करने की स्थिति में दुखियारी बहू घर से भाग जाती। आधी रात को जब अंधेरे का साम्राज्य होता, पूरा गांव अंधेरे में डूबा हुआ होता, लोग गहरी नींद में सो रहे होते, तब वह दुखियारी बहू बगल में कोई फटा–पुराना कपड़ा दबाती और घर छोड़कर चली जाती थी।' लेकिन बड़ी मुसिबतों को झेलकर मायके पहुँचने पर उसे सहानुभूति प्रेम की जगह डांट–फटकार मिलती और ससुराल से आया 'पुरुष उसे पीटने लगता। फिर लड़की का पिता और भाई भी उसे मारते और वापस ससुराल भेज देते। भूख से व्याकुल वह अबला फिर कसाई के दरवाजे पर आ जाती थी।' जानवर को भी कोई इतना बेरहमी से पीटता नहीं होगा और उसका तिरस्कार करके उसके पांव में खोड़ा डालकर बंदी नहीं बनाता होगा। लेकिन पितृसत्ता की निघृणता ने स्त्री के रूप में जन्मी अबला के लिए इससे भी बड़ी सजा का प्रावधान किया है।

बेबीताई इस मर्मांतक प्रसंग को चित्रित करके पितृसत्ता की वहशीयत को बेनकाब करके स्त्री के दूर्भाग्य को बयान करती है। 'ससुराल पहुँचने पर उस पर एक नया कहर टूट पड़ता। पाँच किलो वनज की लकड़ी बढ़ई के पास ले जाकर गोल आकार में कटवाई जाती। उस गोल लकड़ी के बीचोबीच पांव भीतर घूसने जितना छेद बनवाया जाता। पांव में पहनाने के बाद वह निकल न जाए, इसलिए छेद के बीचोबीच एक सरिया लगा दिया जाता। इस लकड़ी को बहू के सीधे पांव में पहना दिया जाता। इसे 'खोड़ा' कहा जाता है। इस तरह अपनी बहू को खोड़ा पहनाने वाली सास पचास में से एक होती थी। यह खोड़ा पहनकर बहू को सारा काम करना होता था।' स्त्री का निरंतर शोषण और उसकी अस्मिता को कुचला जाना और उसके विरुद्ध स्त्री का जीवन जीने के लिए जिवट संघर्ष दलित महिला आत्मकथनों में पहली बार उजागर किया गया है। अन्याय, गुलामी, वंचना स्त्री के जीवन को एक भयावह दीनता, लाचारी की पीड़ा झेलने के लिए मजबूर कर देती है। 'जीवन हमारा' ने स्त्री जीवन की इस भीषण सच्चाई को उजागर करके स्त्री की समाज में दीनहीन स्थिति पर प्रकाश डाला है। एक ऐसे ही हृदयविदारक प्रसंग का चित्रण बेबीताई करती है जिसमें पति द्वारा या ससूर द्वारा बार–बार मायके भागकर अपनी मुक्ति की राह ढूंढ़ती बहू के नाक काटने की दर्दनाक और अमानुषता को चित्रित किया है। इस भारतीय व्यवस्था में स्त्री को दोय्यम दर्जे की व्यक्ति मानकर उसकी स्वाधीनता को छीनने का हक पितृसत्ता ने अपने हाथ में रखा है। 'बाहरी जातिवादी प्रवृत्तियों से सतत संघर्ष करने के साथ आंतरिक पितृसत्तात्मक सत्ता के दबाव को झेलना दलित स्त्री जीवन की सच्चाई है।' (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 21)

जीवन हमारा जैसे प्रामाणिक दस्तावेज में दलित चेतना के साथ–साथ स्त्रीवादी चेतना भी बड़ी शिद्दत से अभिव्यक्त हुई है। लेखिका के अनुसार स्त्री पर होनेवाले अन्याय, जुल्म से बचने के लिए औरतों के शरीर में देवता आने पुरुष होते। जब देवता आते तब ये महिलाएं अजीब तरह की आवाजें निकालती और अपने ससूर, देवर, पति और सास से अपना सम्मान करवाती अर्थात् उस पर हलदी–कुमकुम चढ़ाकर सारथी से वृक्ष को छोड़ देने की प्रार्थना करते। इस अंधःश्रद्धा में औरते श्रद्धा से अधिक अपने सम्मान कराने का एक तरह से नाटक रचती थी। इसे हम संत्रास से बचने का मार्ग भी कह सकते हैं। देवता आने वाली स्त्री से घर के परिवार वाले डरे हुए रहते और कुछ समय के लिए ही सही वह शोषण और यातना से छुटकारा पा जाती।

उस समय में दलित समुदाय को अंधश्रद्धा ने जकड़ रखा था। घर के सबसे बड़े बेटे को पोतराज बनाकर देवी को अर्पण किया जाता। इस प्रथा को उस समय प्रतिष्ठा की नजर से देखा जाता। अज्ञान के कारण और धर्म के भय से लड़की को देवदासी के रूप में देवी को समर्पित भी किया जाता और फिर वह कभी शादी करके घर बार नहीं बसा पाती। देवदासी प्रथा ने हजारों–लाखों स्त्रियों के यौन शोषण का वास्ता धार्मिक आवरण में ढककर आसान कर दिया। आज तक भी यह प्रथा महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और ओड़िसा राज्यों में सरेआम जारी है। आधुनिक समाज में मध्ययुग से चली आ रही स्त्री यौन शोषण को इस अघोरी अमानवीय परंपरा को धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आश्रय मिला हुआ है। दलित वर्ग की बच्चियों को ही देवदासी बनाए जाने की यह प्रथा जितनी जाति आधारित है उससे अधिक दलित समाज में फैले अज्ञान और अंधःविश्वासों के जाल में फंसे होने का फायदा मंदिर के पुजारी, गांव के मुखिया–सवर्ण उठाते हैं। देवदासी प्रथा दलित स्त्री के यौन शोषण को धार्मिक आवरण में आसान बना दी गई जघन्य प्रथा है। उम्र ढलने के बाद देवदासियों को वेश्या व्यवसाय में बेच दिया जाता और इसके बदले में लाखों रुपयों की लेन देन गांव के दबंग और वेश्या व्यवसाय में लिप्त दलालों के बीच चलती है। दलित समुदाय अंधविश्वास और अज्ञान के कारण अपनी बेटी–बहनों को देवदासी बनाए जाने पर गर्व महसूस करते हैं। धर्म इंसान की बुद्धि, मन को इस प्रकार जकड़ लेता है कि अपना हित और अहित भी वह समझने में समर्थ नहीं रहता। बेबीताई के नाना–नानी ने जेजुरी में डॉ. आंबेडकर के भाषण को सुना था, वे सभी उनके विचारों से सहमत होकर लौटे और गांव–गांव, घर–घर घुमकर उनके विचारों को सुनाते फिरते। 'रोज चबूतरे पर लोगों को इकट्ठा करते और आंबेडकर की बताई एक–एक बात विस्तार से लोगों को बताते।' नानाजी गांव के मुखिया के मुंह के आगे हाथ नचाते हुए कह रहे थे– 'अरे मूर्खों, अब तो होश में आओ। अरे, वो गोरे लोगों के मुलुक से पढ़–लीखकर आया है। वो पागल नहीं है। अरे उसे अपने लोगों का भविष्य उज्ज्वल लगा होगा, तभी न हम लोगों को सुधारने की बात कही उसने। अब समझ लो कि हमें अपने डोमपने से बाहर आना है। शहर में जो अपने लोग है जरा देखो उन्हें, कितने सुधरे हुए है। सबसे पहले तुम अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू कर दो। गांव–भर की गंदगी साफ करना छोड़ दो। मरे हुए जानवर खाना छोड़ दो।' लेकिन अज्ञानता के अंधकार में डूबे डोम समुदाय को ये सब बातें समझ नहीं आती। डोमपन को, भीख मांगकर खाने को, येसकरकी को वे अपना भाग्य समझते धर्म के आदेश का वे उल्लंघन करना नहीं चाहते। वे उसे उल्टा सवाल करते 'अरे तुम मिलिट्री में रहे, उनकी रोटी खाई और अब उन्हीं की भाषा बोल रहे हो। हम जैसे हैं, हमें वैसा ही रहने दो। भगवान ने जो हमारी सीमा तय कर दी है, हम वहीं तक रहेंगे। अरे, हमारा जन्म–धर्म यही है। यह हम छोड़ने वाले नहीं हैं।' ईश्वर, धर्म, ग्रंथ, कर्म और भाग्यवाद के फेरे में फंसे दलितों को अपनी दीनहीन स्थिति का कभी अहसास किसी ने कराया नहीं और वे

खुद कभी इस बारे में सोचने की कोशिश नहीं करते। अन्यथा पूरे डोम समुदाय की इस दूर्दशा के प्रति बिना सोचे वे यह नहीं कहते। 'पीढ़ियों से हम लोग अपनी पहली संतान खंडोबा को समर्पित करते रहे हैं। मुरली हमारी कुल देवता के समान हैं। इसीलिए डोम के सभी बच्चों पर खंडोबा की कृपादृष्टि रहती है। देवदासी नहीं बनाएं? अरे, नहीं कैसे...? जिस घर से यलम्मा देवी की नजर फिर जाएगी, वो घर बर्बाद हो जाएगा। यलम्मा देवी सारे घर को जलाकर राख कर देगी। पोतराजा तो असली गाड़ीवान है। हम लोगों का सबसे बड़ा मान–सम्मान पोतराजा है। नहीं, नहीं, ये कभी नहीं होगा। हमारे बुजुर्गों ने जैसा किया है, हम वैसा ही करेंगे।' नाना उन्हें समझाने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। कहते 'ठीक है भाई, तुम लोगों को भगवान की भक्ति करनी है तो दिन–रात करो, लेकिन अपनी औलादों का जीवन तो बर्बाद मत करो।' (जीवन हमारा, पृ. 79)

इस तरह की चर्चा लगातार डोम मोहल्ले में चलती, चबूतरे पर जमावड़ा इकट्ठा होता तो यही बातें उन्हें समझाई जाती। नानाजी ने इसे अपने जीवन का एक अभियान ही बना लिया था। 'धीरे–धीरे ही सही, पर भीम की बातें लोगों को समझ आने लगी।' (जीवन हमारा, पृ. 80)

'जीवन हमारा' में दलित स्त्री संसार की व्यथा कथा के साथ दरिद्रता के अभिशाप और पितृसत्ता के दमन के अनेक पहलुओं की परत–दर–परत खोल कर रख दी है। स्त्री अस्तीत्व, अस्मिता, स्वाधीनता के अधिकारों से वंचित किए जाने का किसी को न तो अहसास था न अपनी गुलामी के प्रति बोध।

17.4 डॉ. आंबेडकर का मुक्ति आंदोलन : प्रभाव और चेतना

डॉ. आंबेडकर की जनसभाओं में अभिव्यक्त विचारों से दलित समुदाय जैसे सदियों की गहरी निंद से जाग गया। वे सभी इस बात पर चर्चा, वाद–विवाद करने लगे कि आखिर हम भी सवर्णों की तरह ही इंसान हैं, फिर हम गुलामी क्यों कर रहे हैं? हमारी बस्तियाँ अलग–थलग कुड़े के ढेर पर क्यों? हमारे पास उत्पादन का कोई साधन क्यों नहीं? हम अछूत क्यों कहे जाते। सवालों के बवंडर में गोते खा रहे दलित वर्ग को डॉ. आंबेडकर की हर एक बात अब समझ में आने लगी थी। बच्चों को पाठशालाओं में भेजने की सभी माता–पिता कोशिश करने लगे। बेबीताई के प्रस्तुत कथन से पता चलता है कि डॉ. आंबेडकर के विचारों को सुनने की ललक बढ़ने लगी थी। 'हमारे घर के आगे इमली का बहुत बड़ा पेड़ था, चबूतरे पर जमा लोग अक्सर इमली के पेड़ के नीचे बैठा करते थे। सन् सैंतीस–अड़तीस में भीम की बातों का प्रचार होने लगा था। इमली के पेड़ के नीचे धीरे–धीरे भीड़ जमने लगी। उस समय डोम लोगों के लिए आंबेडकर की चर्चा करना बड़े गर्व की बात हुआ करती थी। आंबेडकर के गुणगान हर वक्त बखाने जाते थे। आंबेडकर द्वारा आयोजित सभा के भाषण उन लोगों तक पहुँचे इसलिए गांव के लोगों ने अखबार मँगवाना शुरू कर दिया था। आज कहाँ–कहाँ सभा है या आंबेडकर कहाँ–कहाँ जाने वाले हैं, ये सारी खबर उन्हें मिलने लगी। चबूतरे पर और किसी बात की चर्चा नहीं होती थी। ऐसा लगता था, मानो आंबेडकर की आत्मा उन लोगों में आ गई हो। इस सबका इतना ज्यादा प्रभाव पड़ा कि लोगों ने अपने बच्चों को स्कूल में भेजना शुरू कर दिया।' (जीवन हमारा पृ. 117)

यह चेतना का प्रभाव था, सभी दलित अपने बच्चों को शिक्षित देखना चाहते थे। सदियों से गुलामी करते आए। दलित समाज इसे ही जीवन समझ रहा था, लेकिन भीम के विचारों की बयार बहने लगी और हर दलित स्त्री–पुरूष खुद को बदलने के लिए प्रस्तुत

था। डॉ. आंबेडकर ने दलितों को मुर्दार माँस न खाने का आहवान किया तो उसे बेबीताई की नानी ने बड़े ही नाटकीय ढंग से गांव के दलितों से मुर्दार माँस न खाने की कसम लेकर इसे हमेशा से मुक्ति दिलाई। बेबीताई ने इस प्रसंग को बड़े ही रोचक ढंग से चित्रित किया। 'बंबई से चंद्राबाई आई है। उसने कलेजा व रान लाने को कहा है, इसलिए मुझे ये चीजें मटन में चाहिए।' हिस्से करने वाला व्यक्ति बोला' ऐसा नहीं होता सीता भाभी, कौन अपना हिस्सा देगा? जिसको जो मिला है वही लेकर जाओ।' तब नानी बहुत खीज गई और गुस्से से तिलमिलाकर बोली 'आज से जो लोग भी ढोर का मांस खाएगा, उसे सूअर की कसम, वो सूअर का मांस खाएगा।' डोम और मुसलमान दोनों के धर्म में सूअर का नाम तक लेने की मनाही है। सूअर का नाम सुनते ही लोग थू–थू करने लगे। लोगों ने अपने हाथ का मटन दूर फेंक दिया। कुछ औरतें नानी को मारने आई तो कुछ औरतों ने नानी को सत्यानाश हो जाए' इस तरह की गंदी–गंदी गालियाँ दी। शोर सुनकर कुछ जवान लड़के आ गए और यह प्रकरण देख उन्होंने नानी को शाबासी दी।

'शाब्बास, सीता भाभी। आज तुमने हम डोम लोगों की आँखें खोल दीं। आज से सब कसम खाओ कि इस तरह मरा जानवर नहीं खाएंगे।'

युवा वर्ग में आए आत्मभान का एक और प्रसंग चित्रित करके बेबीबाई डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के परिवर्तनवादी विचारों को दलितों द्वारा ग्रहण करके व्यवहार में अवलंब करने की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। 'शंकर हेरम मेरा चाचा था। कार्यकर्ताओं में वह सबसे कम उम्र का लड़का था। वह नाईक निंबालकर के राज्य में सिपाही था। ऊँची देह, रंग गोरा, गुस्सैल चेहरा और कड़क आवाज के उस लड़के को देखकर बच्चे बहुत घबराते थे। हेरम की माँ का मानना था कि उसके दोनों बेटे शंकर भगवान के आशीर्वाद से पैदा हुए हैं। इसलिए चैत्र महीने को काँवर उनके घर के आगे सबसे पहले आती। बाबा के भाषण के बाद हेरम काँवर के आने का बेसब्री से इंतजार करने लगा था। चैत्र महीने की एकादशी के दिन काँवर फलटन में आई और प्रत्येक वर्ष की तरह उनके दरवाजे पर उतारी गई। जैसे ही एक व्यक्ति ने कंधे से काँवर उतारी कि हेरम ने काँवर को जोर से लात मारी और पानी गिरा दिया, फिर गरजकर बोला – 'खबरदार जो दोबारा मेरे दरवाजे पर काँवर लाए तो।' इस विद्रोही तेवर के पीछे सदियों से चले आ रहे विश्वास–अंधःविश्वासों के कारण दलित समुदाय की गतिहीन दीनहिन अवस्था से निकलकर नई पीढ़ी परिवर्तन की ओर बढ़ती नजर आती हैं।

रूढ़ि परंपराओं पर दलित समुदाय के गहरे विश्वास होने से और यहाँ की सामाजिक धार्मिक व्यवस्था इसके लिए किस प्रकार जिम्मेदार है। इस पर बेबीताई अपना मत बेबाक रूप में व्यक्त करतीं है। 'इस सबके पीछे का सच क्या है? यह आस्था क्या किसी पाखंड को ओढ़े खड़ी है? यह बात सवर्णों ने कभी इन लोगों को नहीं बताई। इन्हें कभी समझने ही नहीं दिया गया कि क्या सच है और क्या झूठ। हमारी पीढ़ियाँ की पीढ़ियाँ इसी तरह नष्ट कर दी गई। आने वाली तमाम नस्लों को खोखला कर डाला गया। बर्बाद किया और सड़ा डाला।' डॉ. आंबेडकर के मुक्ति संघर्ष से आए परिवर्तन के कारण बेबीताई जाति व्यवस्था के निर्माता ब्राह्मणवादी वर्ग पर जायज गुस्सा व्यक्त करती है। एक जागरूक समाज में यह सवाल उठने स्वाभाविक है, क्योंकि अभी तक के यातनामय दरिद्र जीवन जीने की उनपर की गई सख्ती केवल धर्म की नियती के अनुसार समाज के श्रेष्ठ कहे जाने वाले वर्ग ने अपने हित में की थी। बेबीताई ने 'डॉ. आंबेडकर के क्रांतिकारी अभियान के महत्व का सम्यक विवेचन किया है।'

(जीवन हमारा, प्रस्तावना, मैनेजर पांडेय, पृ. 10)

जीवन हमारा में निजी व्यक्तिगत अनुभवों के स्थान पर समाज के अनुभवों की अभिव्यक्ति, संस्कृति, पीड़ा, यातना, गरीबी, बेचारगी व दलित जीवन की सच्चाई का अधिक चित्रण किया है। इस विशिष्ट पद्धति को अपनाने के कारण समूह के जीवन की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं तथा अनुभवों की सच्चाई को चित्रित किया है। दलित साहित्य आत्मबोध मानव मूल्यों को सर्वोपरी मानता है। वह परिवर्तनवादी और समाज को केन्द्र में रखता है। दलित साहित्य चूंकि व्यक्ति निर्मित न होकर समष्टी मन की अभिव्यक्ति है। दलित रचनाकार समाज परिवर्तन की आकांक्षा में पूर्ण रूप से डूबकर सृजन करके ही अपने उद्देश्य को हासिल कर सकेंगे। लेखक की प्रतिबद्धता ऐसे समुदाय से है जिसे अपने जीवन जीने की पद्धति का, गुलामी का अहसास ही नहीं है। ऐसे समाज को नींद से जगाकर अस्तित्व के अहसास को जगाना बड़ी जटील प्रक्रिया थी। जिन्होंने हिंदू धर्म को जी जान से बचाने की कोशिश इसलिए की, कि वे नहीं जानते थे कि उनके त्रासद जीवन का रचयिता तो यही धर्म है। लेकिन रूढ़ी–रीति–परंपरा–आडंबर– अंधविश्वास के संजाल से बने धर्म की सही तस्वीर प्रस्तुत करने के लिए डॉ. आंबेडकर के आने तक इन्हें इंतजार करना पड़ा। भारतीय सामाजिक संरचना पर प्रहार करके जाति उन्मूलन के सिद्धांत को समझाकर उन्होंने केवल दलित समुदाय को ही नहीं, संपूर्ण भारतीय मानस को झकझोर दिया। एक बार देश के बड़े नेता भी जाति के जटिलतम तंत्र के बारे में सोचने के लिए मजबूर हुए। अज्ञान और घोर अंधविश्वास की गर्त में डूबे दलित समुदाय को गुलामी का अहसास करवाकर आत्मबोध जगाना डॉ. आंबेडकर के जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य था। दलित मुक्ति आंदोलन का शुरूआती संघर्ष दलितों के मानवीय अधिकारों का संघर्ष था। महाड का चवदार तालाब का सत्याग्रह, नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह, मनुस्मृति का सार्वजनिक दहन इसी आंदोलन के क्रांतिकारी कार्यक्रम थे। दलितों ने हजारों वर्षों से पहनी सांप जैसी गुलामी की केंचुल फेंककर एक नए मानव, स्वाधीन मानव, मुक्त मानव के रूप में अपने आप को खोज निकाला। इसका साक्षात्कार 'जीवन हमारा' आत्मकथन होता है।

17.6 सारांश

दलित आत्मकथन दलित मुक्ति संघर्ष से विकसित चेतना का ही विस्तार नहीं बल्कि पारिवारिक स्नेहसंबंध अथवा जीवन स्थिति को समझने के महत्वपूर्ण दस्तावेज है। आत्मकथन जीवन की व्यथाओं के बावजूद समाज के सदस्यों में प्रेमभाव जगाते हैं। 'जीवन हमारा' में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। यह आत्मकथन स्त्री जीवन की जीवन संवेदनाओं को केंद्र में रखकर उसे आलोचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। परिवार में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान विशेषकर माँ का, उसके श्रम और संघर्ष का होता है। इसका भी सम्यक चित्रण 'जीवन हमारा' में किया गया है। 'जीवन हमारा' में स्त्री की व्यथा, दुःख और उसकी भावनाओं की अवहेलना को अनेक संदर्भों में अभिव्यक्ति दी गई है। वर्णव्यवस्था, गरीबी, अस्पृश्यता और पितृसत्ता के चंगुल में एक स्त्री को जिंदा रहने के लिए कितनी यातनाओं से गुजरना पड़ता है। इस वास्तविकता को उनके अनेकानेक संदर्भों सहीत इस समाज के समक्ष खोलकर रखा है। प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए सुखमय भविष्य का सपना देखती स्त्री 'जीवन हमारा' में चित्रित हुई है।

खंड के प्रश्न

1. अक्करमाशी होने के अहसास से गुजरते लेखक के मानसिक अंतर्द्वन्द्व की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।
2. मराठी दलित आत्मकथनों में 'अक्करमाशी' की विशिष्टता को रेखांकित कीजिए।
3. शिक्षा क्षेत्र में मौजूद जातिगत भेदभाव में शिक्षकों की भूमिका की समीक्षा कीजिए।
4. शरण कुमार लिंबाळे के जीवन को दिशा देने में नाना की भूमिका को रेखांकित कीजिए।
5. दलित माँ से दैहिक संबंधों से जन्में शरण कुमार लिंबाळे को नाम देने में कथित सवर्ण पिता क्यों विरोध दर्शाता है?
6. गरीब दलित स्त्री की यातनामय अपमानजनक जीवन स्थितियों के लिए धार्मिक प्रथाएं और आर्थिक निर्भरता कारणभूत है। इस कथन को स्पष्ट करें।
7. जाति धर्म और शास्त्रों की अमानवीयता के समाज शास्त्र पर एक निबंध लिखिए।
8. आत्मकथन 'अक्करमाशी' यातना से मुक्ति की विद्रोही अभिव्यक्ति है। इस कथन की पुष्टि सोदाहरण कीजिए।
9. 'जीवन हमारा' की केन्द्रीय विषयवस्तु में अभिव्यक्त समष्टीगत मूल्यों को रेखांकित कीजिए।
10. 'जीवन हमारा' के आधार पर दलित जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सरोकारों का विवेचन कीजिए।
11. 'जीवन हमारा' में लेखिका दलित स्त्री के तिहरे शोषण की जघन्य परंपराओं को उद्घाटित करती है। सोदाहरण कथन की पुष्टि कीजिए।
12. दलित मुक्ति आंदोलन और दलितों में उभरे आत्मबोध के कारणों का विवेचन कीजिए।
13. सवर्ण दंभ, जातिप्रथा तथा आर्थिक निर्भरता से दलित जीवन में व्याप्त यातनामय स्थिति पर 'जीवन हमारा' के माध्यम से आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
14. दलितों को उनकी शोषित–वंचित स्थिति से अवगत कराने में डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी की प्रेरक भूमिका को रेखांकित कीजिए।
15. दीनहीन यातनामय वंचित स्थिति में भी सुख की तलाश करती दलित स्त्री के प्रयासों की विवेचना कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

अक्करमाशी, शरण कुमार लिंबाळे, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

जीवन हमारा, बेबीताई कांबळे, किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली।

उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज, चौथीराम यादव, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

दलित साहित्य : रचना और विचार, पुरुशोत्तम सत्यप्रेमी, अतिष प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित साहित्य : दशा और दिशा, माता प्रसाद, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

दलित आत्मकथाएं, अनुभव से चिंतन, सुभाश चंद्र, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद।

साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, डॉ. विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली।

दलित साहित्य की भूमिका, हरपाल सिंह 'अरुष', जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।

दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, रमणिका गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली।

हंस (मासिक, दलित साहित्य विशेषांक), संपादक – राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।

अपेक्षा (त्रैमासिक, दलित आत्मकथन विशेषांक), संपादक – तेज सिंह, नई दिल्ली।